मासिक समाचारपत्र • पूर्णांक 145 • वर्ष 15, अंक 9 • दिसम्बर 2025 • दस रुपये • (विशेष अंक) 20 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

पूँजीपतियों के मुनाफ़े के लिए अरावली पर्वत श्रृंखला को तबाह करने पर सुप्रीम कोर्ट की मुहर 7

मोदी सरकार के चार लेबर कोड क्या हैं और ये मज़दूर-विरोधी क्यों हैं? 16

बढ़ रहे प्रदूषण के बीच मोदी सरकार की जुमलेबाज़ी और मज़दूर वर्ग के बिगड़ते हालात 9

‘चार लेबर कोड’ मज़दूरों-कर्मचारियों के अधिकारों पर सबसे बड़ा हमला है!

अब एकदिवसीय हड़तालों की रस्मअदायगी का वक़्त नहीं रहा!

सभी मज़दूरों-कर्मचारियों, केन्द्रीय ट्रेड यूनियन फ़ेडरेशनों व स्वतन्त्र यूनियनों का आह्वान!

अनिश्चितकालीन आम हड़ताल के लिए एकजुट हो!!

अपने तीसरे कार्यकाल के दौरान मोदी सरकार खुलकर उन सभी कार्यभारों को पूरा कर रही है जिनके लिए देश के पूँजीपति वर्ग ने सत्ता की कमान उसके हाथ में सौंपी थी। आर्थिक मन्दी से बिलबिलाया हुआ पूँजीपति वर्ग लम्बे समय से “धन्धे की आज़ादी” के लिए किलबिला रहा था। वही “आज़ादी” मोदी सरकार ने चार लेबर कोड की शक्ल में मालिकों और पूँजीपतियों को बतौर सौगात थमायी है। देश के करोड़ों मज़दूरों-कर्मचारियों की बदहाल ज़िन्दगी को और भी तबाह करने वाले चार ख़तरनाक लेबर कोड मोदी सरकार पिछले महीने लागू कर चुकी है। 21 नवम्बर को अचानक एक अधिसूचना जारी करके सरकार ने इसकी घोषणा कर दी। यह फ़ासीवादी मोदी सरकार द्वारा मज़दूरों और कर्मचारियों के अधिकारों पर अबतक का सबसे बड़ा हमला है।

इस घोषणा के कुछ ही दिनों बाद मोदी सरकार ने इस देश के ग्रामीण व खेतिहर मेहनतकशों पर भी एक हमला बोल दिया। सरकार ने मनरेगा क़ानून को ख़त्म करके उसकी जगह

सम्पादकीय अग्रलेख

‘विकसित भारत - रोजगार और आजीविका की गारण्टी मिशन (ग्रामीण) विधेयक, 2025 (VB-G RAM G)’ पारित किया जो वस्तुतः मनरेगा के तहत मिलने वाले सीमित रोज़गार गारण्टी के अधिकार को भी समाप्त कर देता है, केन्द्र सरकार की क़ानूनी व वित्तीय जवाबदेही को अतिसीमित बना देता है और वास्तव में धनी किसानों व खेतिहर पूँजीपति वर्ग को सस्ती दरों पर मज़दूर मुहैया करवाने का नया क़ानूनी औज़ार प्रदान करता है। मनरेगा को समाप्त कर इस नये क़ानून के तहत कृषि के पीक सीज़न में 60 दिनों के कार्य-निषेध (ब्लैकआउट फ़ेज़) का प्रावधान किया गया है। यह क़दम यही दिखलाता है कि धनी किसानों समेत पूरे पूँजीपति वर्ग की लॉबी की लम्बे समय से चली आ रही मनरेगा क़ानून को ख़त्म करने की माँग की तामील मोदी सरकार ने की है। रोजगार का सीमित अधिकार देने वाला मनरेगा क़ानून लम्बे समय से धनी किसानों-कुलकों की आँखों में किरकिरी बना हुआ था क्योंकि इसकी वजह से खेतिहर व ग्रामीण मज़दूर वर्ग की मोलभाव की सापेक्षिक ताक़त बढ़ी थी और वे गाँवों में दिहाड़ी मज़दूरी को लेकर अधिक मोलभाव करने की स्थिति में थे और कम मज़दूरी मिलने की स्थिति में बेहतर विकल्पों का इन्तज़ार कर सकते थे। अब नये क़ानून के आने के बाद ग्रामीण सर्वहारा की पहले से ही अरक्षित स्थिति और भी बदतर हो जायेगी।

बहरहाल, मोदी सरकार इन तमाम

(पेज 11 पर जारी)

शान्ति (SHANTI) विधेयक, 2025

कॉरपोरेट मुनाफ़े के लिए मानव जीवन को ख़तरे में डालने का बेशर्म दस्तावेज़

● ज्योति

17 दिसम्बर को फ़ासीवादी मोदी सरकार ने लोकसभा में एक और जनविरोधी विधेयक – ‘सस्टेनेबल हार्नेसिंग एण्ड एडवांसमेण्ट ऑफ न्यूक्लियर एनर्जी फॉर ट्रांसफॉर्मिंग इण्डिया (SHANTI), 2025’ पेश किया और पारित कर दिया। एक बार अधिसूचित हो जाने के बाद, यह क़ानून परमाणु ऊर्जा अधिनियम, 1962 और परमाणु क्षति के लिए नागरिक दायित्व अधिनियम, 2010 का स्थान ले लेगा। यह विधेयक और कुछ नहीं बल्कि ऊर्जा उत्पादन के अत्यन्त ख़तरनाक क्षेत्र को निजी कम्पनियों के लिए खोलने का एक प्रयास है, जिसमें उनकी जवाबदेही ना के बराबर होगी। जैसा कि फ़ासीवादी मोदी सरकार पिछले कई वर्षों से बार-बार करती आ रही है, यह एक और प्रयास है जिसके तहत मुनाफ़े का निजीकरण और आपदाओं व वित्तीय दायित्वों का समाजीकरण किया जा रहा है।

इस प्रकार मोदी सरकार निजी कम्पनियों को परमाणु ऊर्जा उत्पादन से मुनाफ़ा कमाने में सक्षम बनाने की दिशा में आगे बढ़ रही है। हालाँकि इस बदलाव को सार्वजनिक-निजी भागीदारी (PPP) मॉडल के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है, लेकिन तारीख़ गवाह है कि इस तरह के प्रबन्धों से निजी कम्पनियों को ही असमान रूप से लाभ मिलता है, जबकि जोख़िम और ज़िम्मेदारी को आम जनता पर डाल दिया जाता है। आइए, इस विधेयक के विभिन्न पहलुओं के बारे में जानते हैं।

इस विधेयक की शुरुआत में ही सरकार ने अपनी मंशा स्पष्ट कर दी है। दरअसल, बड़े पैमाने पर होने वाले परमाणु रिसाव, कचरे का अनुचित प्रबन्धन व निपटारा तथा परमाणु संचालन से जुड़े अन्य बड़े जोख़िम वाले कारकों से होने वाली आपदाओं को छिपाने, उन्हें कम करके दिखाने और उनकी ज़िम्मेदारी से पूँजीपतियों और निजी प्रतिष्ठानों को मुक्त करने की मंशा से ही यह विधेयक मूलतः संचालित है। जैसे-जैसे आप इस विधेयक को पढ़ेंगे तो पायेंगे कि यह पूरा क़ानून इस अत्यन्त ख़तरनाक क्षेत्र में बड़े पैमाने पर निजी और विदेशी भागीदारी को प्रोत्साहित करने के लिए बनाया गया है। वहीं दूसरी तरफ़ सार्वजनिक सुरक्षा सम्बन्धी चिन्ताओं को पूरी तरह से नज़रअन्दाज़ कर दिया गया है। यह विधेयक पूरी निर्माण श्रृंखला यानी खनन से लेकर संयंत्र संचालन और कचरा प्रबन्धन तक के लिए एक ही लाइसेंस की अनुमति देता है। इससे निजी कम्पनियाँ बिना किसी वास्तविक जवाबदेही और दण्ड से मुक्त रहते हुए अधिकतम मुनाफ़ा कमा सकती हैं।

विधेयक के अगले हिस्से में, ख़राब उपकरणों या दोषपूर्ण रिएक्टर डिज़ाइनों से उत्पन्न दायित्वों के लिए

(पेज 6 पर जारी)

उत्तर प्रदेश में एसआईआर का खेल और डिटेंशन कैम्प बनाने की फ़ासिस्ट साज़िश

(पेज 20 से आगे)

मेहनतकश आबादी, ग़रीब दलित, मुसलमानों, स्त्रियों, प्रवासी मज़दूरों, झुग्गियों और सड़कों पर रहने वाली और घुमन्तू आबादी का एक बड़ा हिस्सा इस साज़िश का शिकार होगा। एक बड़ी आबादी जिसका नाम एसआईआर के ज़रिये काटा जायेगा उसके लिए अपनी नागरिकता को साबित करना मुश्किल होगा। उन्हें डिटेंशन कैम्पों में ठूँस दिया जायेगा। यह आबादी न तो यह साबित कर पायेगी कि वह बांग्लादेश की या किसी और देश की है और न ही उनकी कोई वापसी होगी। उन्हें मताधिकार आदि से वंचित कर दोयम दर्जे के नागरिक के तौर पर इन डिटेंशन कैंपों में रखा जायेगा। वैसे तो चार लेबर कोड के लागू होने के बाद तो हर कारखाना-फ़ैक्ट्री डिटेंशन कैम्प जैसे ही होंगे। लेकिन इस डिटेंशन कैंप में रहने वाले लोगों के कोई नागरिक अधिकार नहीं होंगे। उन्हें अम्बानी-अदानी के कारखानों में जानवरों से बदतर हालात में खटाया जायेगा। यानी अपने देश के नागरिकों को ही नागरिकता से वंचित कर फ़ासिस्ट उन्हें अपने "असली नागरिक" यानी अम्बानी-अदानी जैसे पूँजीपतियों की ग़ुलामी में लगा देंगे!

हिटलर-मुसोलिनी ने भी अपने वक़्त में बहुत से यहूदियों को डिटेंशन कैम्प में ठूँस दिया था। उनसे इतना ज़्यादा काम लिया जाता था कि वे बहुत जल्दी मर जाते थे। भारतीय फ़ासिस्ट अपने आकाओं से सीखते हुए आज की वैश्विक राजनीतिक-आर्थिक परिस्थितियों के मुताबिक़ इसी प्रयोग को संविधान और क़ानून के दायरे में रहते हुए लागू कर रहे हैं।

इसलिए मेहनतकश हिन्दू आबादी को कम-से-कम अब समझ लेना चाहिए कि एनआरसी, सीएए और अब एसआईआर वास्तव में समूची जनता के ख़िलाफ़ है और जहाँ कहीं मोदी सरकार इसे फिर से करने का प्रयास करे, वहाँ हमें सड़कों पर उतरकर इसका विरोध करना चाहिए। "घुसपैठियों" का नक़ली डर दिखाकर वास्तव में सभी धर्मों व जातियों की आम मेहनतकश जनता को निशाना बनाया जा रहा है। निश्चित तौर पर, इसके ज़रिये सबसे ज़्यादा मुस्लिम आम जनता के विरुद्ध ज़हरीला माहौल बनाया जा रहा है ताकि बेरोज़गारी और महँगाई से त्रस्त जनता का गुस्सा एक नक़ली दुश्मन पर फूट जाये और मोदी सरकार को जनता कठघरे से बाहर कर दे। हिन्दू का दुश्मन मुसलमान या मुसलमान का दुश्मन हिन्दू नहीं है, बल्कि समस्त आम मेहनतकश हिन्दुओं, मुसलमानों, सिखों, ईसाइयों, दलितों, स्त्रियों, आदिवासियों की दुश्मन मोदी सरकार और यह पूँजीवादी व्यवस्था है।

एसआईआर के ज़रिये 'केचुआ' और फ़ासीवादी ताक़तों की साज़िश को तभी ध्वस्त किया जा सकता है जबकि अवाम ईवीएम की जगह बैलेट पेपर से चुनाव करवाने के लिए सड़कों पर ज़बरदस्त आन्दोलन के लिए उतरे। क़ायदे से तो विपक्ष जो कि लम्बे समय से चुनावों में वोट चोरी का मुद्दा उठा रहा है उसे चुनावों का बहिष्कार करते हुए सड़कों पर उतर जाना चाहिए। क्योंकि जब वह आँकडों और तथ्यों के ज़रिये यह बात साबित कर चुका है तो फिर चुनाव के बाद जनादेश को स्वीकार कर लेना उनके वोट चोरी के मुद्दे को जनता के बीच संदिग्ध बना देता है। लेकिन आम तौर पर पूँजीवादी जनवाद के क्षरण के वर्तमान दौर में विपक्षी पूँजीवादी ग़ैर-फ़ासिस्ट पार्टियों द्वारा 'निष्पक्ष और पारदर्शी' मतदान के जनवादी अधिकारों के लिए सड़कों पर उतरना सम्भव नहीं दिखता। 'निष्पक्ष और पारदर्शी' मतदान के जनवादी अधिकार के लिए क्रान्तिकारी ताक़तों और इंसाफ़पसन्द प्रगतिशील शक्तियों को आम जनता को लामबंद करने की तैयारी में लगना होगा। इसे विमर्श और प्रतीकात्मक प्रदर्शन की जगह एक देशव्यापी जुझारू जनआन्दोलन में तब्दील करना होगा। दूसरे, तमाम क्रान्तिकारी और प्रगतिशील ताक़तों को एसआईआर के ज़रिये नागरिकता से हाथ धोने वाले लोगों की हर तरह की मदद के लिए आगे आना होगा। "अवैध घुसपैठ" और "मुसलमान' के सरकारी साम्प्रदायिक फ़ासिस्ट शोर की सच्चाई को आम जनता में उजागर करना होगा। इस फ़ासीवादी सरकार का घोर पूँजीपरस्त अमानवीय चेहरा जनता में नंगा करना होगा।

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" – लेनिन

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।
बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/जुटाइए।
सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिए।

प्रिय पाठको,

अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया इसकी सदस्यता लें और अपने दोस्तों को भी दिलवाएँ। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं। या फिर QR कोड स्कैन करके मोबाइल से भुगतान कर सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :
मज़दूर बिगुल,
द्वारा जनचेतना,
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787,
IFSC: PUNB0185400
पंजाब नेशनल बैंक, अलीगंज शाखा, लखनऊ

QR कोड व UPI

UPI: bigulakhbar@okicici

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :
फ़ोन : 0522-4108495, 8853476339 (व्हॉट्सऐप)
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं। मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर नि:शुल्क पढ़ा जा सकता है। आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिए भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं : www.facebook.com/MazdoorBigul

अपने कारख़ाने, वर्कशॉप, दफ़्तर या बस्ती की समस्याओं के बारे में, अपने काम के हालात और जीवन की स्थितयों के बारे में हमें लिखकर भेजें। आप व्हॉट्सएप पर बोलकर भी हमें अपना मैसेज भेज सकते हैं। नम्बर है : 8853476339

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ-226016 फ़ोन: 8853476339
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोन: 9289498250
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति – 10/- रुपये वार्षिक – 125/- रुपये (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता – 3000/- रुपये

काकोरी ऐक्शन के क्रान्तिकारियों के शहादत दिवस पर

धार्मिक बँटवारे की साज़िशों को नाकाम करो! एकजुट होकर संघर्ष करो!!

रामप्रसाद 'बिस्मिल'

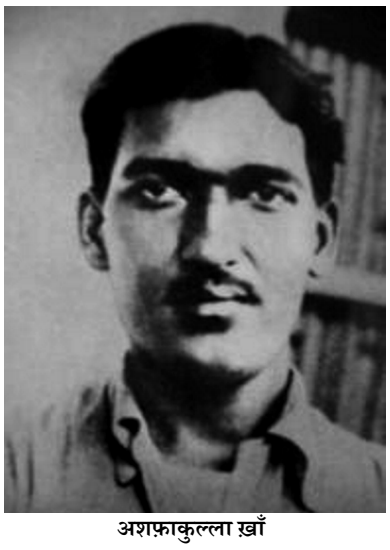

अशफ़ाकुल्ला ख़ाँ

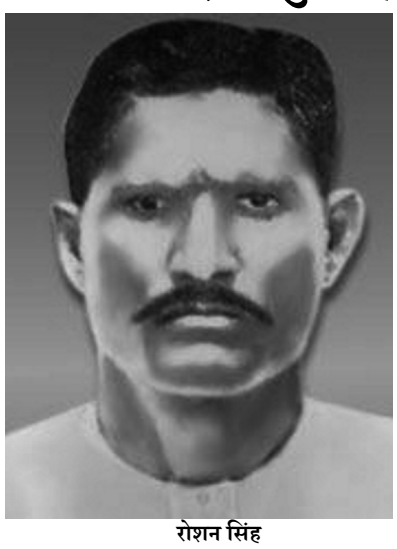

रोशन सिंह

राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी

● ज्ञान

17 और 19 दिसम्बर की तारीख़ को काकोरी ऐक्शन के क्रान्तिकारियों ने अपनी शहादत से अमर बना दिया है। देश के इन चार बहादुर बेटों के नाम थे – राम प्रसाद 'बिस्मिल', अशफ़ाक़उल्ला खान, राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी और रोशन सिंह। 9 अगस्त, 1925 को लखनऊ के निकट काकोरी में क्रान्तिकारियों ने ट्रेन में जा रहे अंग्रेज़ी सरकार के ख़ज़ाने को लूट लिया था। यह घटना लूट और अन्याय पर टिकी अंग्रेज़ी हुकूमत के गालों पर एक करारा तमाचा थी। इस घटना से बौखलायी ब्रिटिश सरकार ने इन क्रान्तिकारियों की धरपकड़ शुरू की। इसके बाद 1927 में 17 दिसम्बर के दिन गोण्डा में राजेन्द्र नाथ लाहिड़ी और 19 दिसम्बर को गोरखपुर में राम प्रसाद बिस्मिल, फ़ैज़ाबाद में अशफ़ाक़ उल्ला ख़ान और इलाहाबाद में रोशन सिंह को अंग्रेज़ों ने फाँसी दी थी। कई अन्य क्रान्तिकारियों को काला पानी और कठोर कारावास की सज़ा मिली। चन्द्रशेखर आज़ाद अंग्रेज़ों के हाथ नहीं आये। ये सभी क्रान्तिकारी हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन (एचआरए) से जुड़े हुए थे।

आज इन क्रान्तिकारियों की शहादत को लगभग एक सदी पूरा होने वाली है। लेकिन एक सदी बाद भी एचआरए के इन शहीद क्रान्तिकारियों के सपने अधूरे हैं। इन शहीदों ने केवल आवेश में आकर शहादत नहीं दी थी बल्कि उनके पास ऐसा समाज बनाने का सपना था, जो बराबरी और न्याय पर टिका हुआ समाज हो। लेकिन आज हमारे देश में आज़ादी के इतने वर्ष बाद भी बराबरी और न्याय की ये सारी बातें केवल किताबी बातें बनकर रह गयी हैं। इसका अन्दाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि अभी हाल में ही आयी 'ग्लोबल इनइक्वैलिटी रिपोर्ट' के मुताबिक़ देश की ऊपर की 10% आबादी के पास देश की कुल आय का 40% इकट्ठा होता है जबकि नीचे की 50% आबादी मात्र 15% में गुज़ारा करती है। स्थिति यह है कि शिक्षा, चिकित्सा, रोज़गार जैसे ज़रूरतों को पूरा करना भी बड़ी आबादी के लिए मुश्किल होता जा रहा है। यह हालात विशेष तौर पर पिछले ग्यारह साल के मोदी-शाह राज में बद से बदतर हुए हैं।

एचआरए के इन शहीदों की दूसरी महत्वपूर्ण विरासत थी एक सच्ची धर्मनिरपेक्षता पर टिके समाज की विरासत। राम प्रसाद 'बिस्मिल' और अशफ़ाक़ उल्ला ख़ान दो अलग-अलग धर्मों को मानने वाले क्रान्तिकारी थे, लेकिन राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन में इन क्रान्तिकारियों ने अपनी दोस्ती से एक मिसाल क़ायम की थी। यह वही दौर था जब अंग्रेज़ 'फूट डालो, राज करो' की नीति पर देश की जनता को आपस में ही बाँटने में लगे हुए थे और इस काम में 'हिन्दू महासभा' और 'मुस्लिम लीग' जैसे संगठन उनका साथ दे रहे थे। ऐसे दौर में हमारे देश के इन क्रान्तिकारियों ने न केवल अंग्रेज़ों की इस नीति का पर्दाफ़ाश किया बल्कि देश की जनता को ऐसी सभी साम्प्रदायिक ताक़तों से सावधान रहने का सन्देश दिया। फाँसी से पहले अपने आख़िरी सन्देश में इन शहीदों ने कहा था – "यदि देशवासियों को हमारे मरने का ज़रा भी अफ़सोस है तो वे जैसे भी हो, हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करें। यही हमारी आख़िरी इच्छा थी, यही हमारी यादगार हो सकती है।"

आज देश में सत्ताधारी भाजपा और संघ परिवार ने देश की बड़ी आबादी के बीच में साम्प्रदायिकता का ज़हर घोलने में कोई कोर-कसर नहीं रख छोड़ी है। आज हर छोटे-बड़े मौक़े पर साम्प्रदायिक उन्माद की आग में पूरे देश को झुलसाया जा रहा है। एक तरफ़ धीरेन्द्र शास्त्री जैसे ढोंगी साम्प्रदायिक बाबाओं को साम्प्रदायिक उन्माद भड़काने के नाम पर नफ़रती यात्राएँ और आयोजन करने की खुली छूट दी जा रही है, तो दूसरी तरफ़ राज्य मशीनरी का इस्तेमाल करके साम्प्रदायिक-फ़ासीवादी एजेण्डों को साधा जा रहा है। ऐसे दौर में हमें यह तय करना होगा कि हमारी विरासत अंग्रेज़ों की 'फूट डालो और राज करो' की विरासत होगी, जिसे साम्प्रदायिक फ़ासीवादी भाजपा और संघ परिवार आज हमारे देश में आगे बढ़ा रहे हैं या हमारी विरासत वह होगी जो हमें काकोरी ऐक्शन के इन शहीद क्रान्तिकारियों ने सौंपी है। देश के नौजवानों और आम मेहनतकश आबादी को काकोरी ऐक्शन के शहीदों के शहादत दिवस पर उनकी इस विरासत को आगे बढ़ाने का संकल्प लेना चाहिए।

मिड-डे-मील के तहत आने वाले स्कूलों की संख्या में अभूतपूर्व कमी!

सरकारी स्कूलों की संख्या में भी भारी कमी!

केन्द्र सरकार की मिड-डे-मील योजना का लाभ पहले ही काफ़ी कम बच्चों को मिलता था। मगर बीते दिनों संसद में शिक्षा मंत्री जयन्त चौधरी द्वारा दिये गये आँकड़े तो चौंकाने वाले हैं। 2021-22 तक इस योजना के तहत 11.19 लाख स्कूल आते थे जो 2024-25 में घटकर 10.35 लाख रह गये हैं यानी 5 सालों में 7.5% स्कूल कम हो गये। 84,453 स्कूल मिड-डे-मील योजना (पीएम-पोषण योजना) से बाहर हो गये हैं।

देश में सरकारी स्कूलों की कुल संख्या में भी कमी आयी है। 2020-21 में 10.32 लाख स्कूल थे जो 2024-25 में घटकर 10.13 लाख हो गये, यानी इस बीच 18,727 सरकारी स्कूल बन्द हो गये। 2014 से 2024 के बीच देश में कुल 89,000 स्कूल बन्द हो चुके हैं।

भाजपा-शासित राज्यों में पीएम-पोषण योजना से बाहर होने वाले स्कूल सबसे अधिक है। उत्तर प्रदेश में जहाँ 2020-21 में इस स्कीम के तहत आने वाले स्कूलों की संख्या 1.6 लाख थी, वहीं 2024-25 में यह घटकर 1.4 लाख हो गयी। सिर्फ़ यूपी में पाँच सालों के दौरान तक़रीबन 25,361 स्कूल और इनमें पढ़ने वाले लाखों बच्चे पोषण योजना के लाभ से बाहर हो गये। मध्य प्रदेश में इन पाँच सालों में स्कूलों की संख्या 1.1 लाख से घटकर 88,000 के आसपास रह गयी। असम में भी 9,321 स्कूलों में मिड-डे-मील मिलना बन्द हो गया।

अबतक इस योजना के तहत देशभर के 10-11 लाख स्कूलों में औसतन 8-9 करोड़ बच्चों को एक वक़्त का भोजन मिल रहा था। सरकार द्वारा चलायी जा रही यह योजना पहले ही अपर्याप्त थी लेकिन अब उसे भी धीरे-धीरे मोदी सरकार ख़त्म कर रही है। जब शिक्षा मंत्री से सवाल किया गया तो उन्होंने बहुत बेशर्मी से यह कहकर टाल दिया कि "इस स्कीम के तहत बच्चों को खाना देने की पूरी ज़िम्मेदारी राज्य सरकारों और केन्द्र शासित प्रदेशों की है।"

इनसे यह पूछा जाना चाहिए कि "डबल इंजन" की सरकार होने के बावजूद भी क्यों लगातार लाखों बच्चों की पहुँच से मिड-डे-मील दूर होता जा रहा है? उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और असम में तो राज्य सरकार भी भाजपा की है फ़िर ज़िम्मेदारी किसकी बनती है?

पहले से ही मौजूद सरकारी स्कूलों की संख्या अपर्याप्त थी और उसे बढ़ाने की ज़रूरत थी और बच्चों तक पहुँचने वाले पके हुए खाने की गुणवत्ता को बेहतर करने की ज़रूरत थी लेकिन सरकार बिल्कुल इसके विपरीत दिशा में काम कर रही है। बचे-खुचे स्कूलों को भी बर्बाद करके, उन्हें बन्द करके, पोषण बजट को कम करके, शिक्षा के बुनियादी अधिकार को छीनने का काम कर रही है। आवंटित बजट भी पूरी तरह उपयोग में नहीं लाया जाता है। केन्द्र सरकार ने 2024-25 में पीएम पोषण स्कीम के लिए 12,467.39 करोड़ रुपये आवंटित किये थे मगर उसे बाद में कम करके 10,000 करोड़ कर दिया गया और उसमें भी ख़र्च सिर्फ़ 5,421.97 करोड़ हुए।

इस योजना की शुरुआत ग़रीब घरों से आने वाले बच्चों को शिक्षा और बेहतर पोषण मुहैया कराने के मक़सद से की गयी थी। हालाँकि इस योजना की शुरुआत से ही इसमें धाँधली और भ्रष्टाचार की कई ख़बरें सामने आयीं। सरकार द्वारा आवंटित बजट कभी भी पूरा ख़र्च नहीं होता था, वहीं बच्चों तक पहुँचने वाले खाने की गुणवत्ता की शिक़ायत भी आमतौर पर हर जगह से ही आती थी।

यूँ ही नहीं 'विश्व भुखमरी सूचकांक' में भारत बेहद छोटे और ग़रीब देशों से भी पीछे चला गया है। 2019-21 की एक रिपोर्ट के मुताबिक़ देश की जनसंख्या का 16.3 फ़ीसदी हिस्सा कुपोषित है। यहाँ पाँच साल से कम उम्र के 35.5% बच्चों की लम्बाई उनके उम्र के हिसाब से कम है, 18.7% ऐसे हैं जिनका वजन बेहद कम है क्योंकि उन्हें पर्याप्त आहार नहीं मिलता है। 2.9% बच्चे तो पाँच साल पूरा होने से पहले ही मर जाते हैं। वैसे तो असल तस्वीर इन आँकड़ों से भी ज़्यादा बुरी है लेकिन मोदी सरकार तमाम ऐसे आँकड़ों और तथ्यों को भी झुठलाने का काम करती है। भारत दुनिया के उन 42 देशों की सूची में आता है जिनमें कुपोषण की स्थिति अतिगम्भीर है। नेपाल, श्रीलंका और बांग्लादेश की स्थिति भी "विश्वगुरु" से बेहतर है।

मोदी सरकार के पिछले 11 साल के कार्यकाल में स्थिति और अधिक ख़राब हुई है। बढ़ते कुपोषण और भुखमरी को देखते हुए जब ज़रूरत थी कि बच्चों और लोगों तक बेहतर आहार पहुँचाने का काम सुनिश्चित किया जाये, मिड-डे-मील जैसी स्कीम व अन्य सामाजिक कल्याण की स्कीमों के बजट को बढ़ाया जाये, तब सरकार ठीक इसके विपरीत काम करते हुए नज़र आ रही है। सरकारी स्कूलों के बन्द होने और बच्चों की पहुँच से मिड-डे-मील दूर होने का सीधा प्रभाव उनकी शिक्षा पर पड़ेगा।

कहने के लिए सरकार शिक्षा को हर किसी का अधिकार बताती है लेकिन असलियत इससे कोसों दूर है। पढ़ाई-लिखाई भी आज उन लोगों की ज़ागीर बन कर रह गयी है जिनके पास पैसा है। सरकारी शिक्षा तंत्र को बर्बाद कर दिया गया है जिसकी वज़ह से ग़रीब-मेहनतकश आबादी से आने वाले बच्चे शिक्षा से दूर होते जा रहे हैं। मिड-डे-मील में कमी और सरकारी स्कूलों के बन्द होने का असर बच्चों के साथ-साथ इस स्कीम के तहत काम करने वाले वर्कर्स पर भी पड़ेगा। देश में 26 लाख मिड-डे मील वर्कर्स हैं, जिनकी नौकरियाँ भी ख़तरे में हैं। भाजपा सरकार द्वारा इस योजना को बर्बाद किये जाने के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने की ज़रूरत है। यह बेहतर पोषण और शिक्षा के बुनियादी अधिकार को आम मेहनतकश आबादी के बच्चों से छीनने की तैयारी है।

– दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन (DSAWHU)

मारुति और बेलसोनिका के मज़दूरों के मामलों में गुड़गाँव श्रम न्यायालय ने सुनाये मज़दूर विरोधी फ़ैसले!

● शाम मूर्ति

हाल ही में हरयाणा के श्रम विभाग ने आटोमोबाइल उद्योग की दो कम्पनियों से जुड़े मामलों में मज़दूर-विरोधी फ़ैसले सुनाये। दोनों मामलों में मज़दूरों द्वारा दायर अपील को एक तरफ़ा तरीके से ख़ारिज कर दिया गया। पहला फ़ैसला 2012 के मारुति आन्दोलन के दौरान बर्ख़ास्त एक मज़दूर के मामले में दिया गया। दूसरा फ़ैसला बेलसोनिका यूनियन के पंजीकरण को बहाल करने के लिए की गयी अपील के मामले में दिया गया।

मारुति का मामला

1 दिसम्बर (2025) को गुड़गाँव लेबर कोर्ट द्वारा अपना मज़दूर-विरोधी चरित्र खुलकर उजागर किया गया। 2012 के मारुति आन्दोलन के दौरान बर्ख़ास्त एक मज़दूर (रामनिवास) के मामले में लेबर कोर्ट द्वारा बेहद नंगे और बेशर्म तरीके से मारुति प्रबन्धन का पक्ष लिया गया।

औद्योगिक ट्रिब्यूनल-कम-लेबर कोर्ट ने मज़दूर की बहाली की अपील को खारिज कर दिया। कोर्ट नें मज़दूर के ख़िलाफ़ 28 बिन्दुओं में अपना फ़ैसल सुनाया। बिन्दु नम्बर 27 में कोर्ट ने कहा कि "आज की गलाकाटू प्रतियोगिता वाली ट्रम्पियन दुनिया में राष्ट्र निर्माण हर भारतीय का पवित्र फ़र्ज़ है। इतिहास बताता है कि सिर्फ़ वही अर्थव्यवस्थाएँ आगे बढ़ पायी हैं, जहाँ मज़दूरों को सख़्त अनुशासन में रखा जाता है। अगर भारत को आज की अग्रिम अर्थव्यवस्थाओं से मुक़ाबला करना है, तो अपने वर्कफ़ोर्स को सख़्त अनुशासन में रखना होगा। न्याय विभाग से यह न्यूनतम अपेक्षा तो की ही जा सकती है कि वह ग़लत काम करने वाले मज़दूरों के प्रति सहानुभूति और हमदर्दी की अक्सर दोहरायी जाने वाली दुहाइयों के आगे झुके नहीं और कल्याणकारी क़ानूनों की आड़ में और अधिक अनुशासनहीनता को न पैदा होने दे। अतः मज़दूर को नौकरी से निकालना ग़लत या ग़ैर-क़ानूनी नहीं कहा जा सकता, तथा मामले का फ़ैसला मज़दूर के ख़िलाफ़ सुनाया जाता है।"

उपरोक्त उद्धरण से ही कोर्ट की मंशा स्पष्ट है। कोर्ट के फ़ैसले में, औद्योगिक ट्रिब्यूनल-कम-लेबर कोर्ट ने मज़दूर रामनिवास की बहाली की अपील को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि प्रबन्धन द्वारा उन्हें सेवा से बर्ख़ास्त करना ग़लत या अवैध नहीं था। दरअसल इस फ़ैसले में कोर्ट ने अपना पूँजीपरस्त रवैया बिना लागलपेट के साफ कर दिया है। पूँजीपतियों के मुनाफ़े की हवस को "राष्ट्र हित" क़रार दिया गया है जिसके लिए मज़दूरों को अपना पेट काटकर भी उनकी तिजोरियाँ भरनी होंगी। हड़ताल या आन्दोलन करके "राष्ट्र द्रोही" जैसा बर्ताव नहीं करना होगा! यह फ़ैसला प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्त का भी मखौल उड़ाता है। ग़ौरतलब बात यह है कि उक्त मज़दूर का 2012 की एफ़आईआर में नाम दर्ज नहीं था, न उसके ख़िलाफ़ कोई गवाही थी। बिना आन्तरिक जाँच के उसे बर्ख़ास्त करने के फ़ैसले को कोर्ट द्वारा सही ठहराया गया है। काम पर वापस लिये जाने या मुआवज़ा दिये जाने की तो बात ही दूर है!

मारुति आन्दोलन की शुरुआत कब और कैसी हुई थी?

मारुति आन्दोलन की शुरुआत 2011 से सभी के लिए उचित मज़दूरी, बेहतर कार्य परिस्थितियाँ, ठेका मज़दूरों के स्थायीकरण और यूनियन के अधिकार आदि माँगों से हुई थी। इस प्रक्रिया में मज़दूर यूनियन बनाने में भी क़ामयाब हुए। लेकिन जैसे ही स्थायी मज़दूरों ने कम्पनी में सभी ठेका मज़दूरों के स्थायीकरण की माँग को आगे बढ़ाया, प्रबन्धन ने यूनियन तोड़ने और पदाधिकारियों समेत मज़दूरों को तंग करना शुरू कर दिया था।

इसका बड़ा मौक़ा प्रबन्धन को 2012 में मज़दूरों और कम्पनी के भाड़े के गुण्डों में टकराव के वक़्त मिला गया था। कम्पनी में आग लगने की घटना में मैनेजर की मौत का दोष मज़दूरों पर मढ़कर मज़दूरों को एकतरफा अपराधी घोषित कर दिया गया था। मीडिया से लेकर सरकार तक किसी ने सच जानने की कोशिश नहीं की। इस घटना का फ़ायदा उठाकर प्रबन्धन ने नयी यूनियन की मान्यता रद्द करने की कोशिश भी की। ग़ौरतलब है कि कम्पनी प्रबन्धन ने इस घटना की सीसीटीवी फुटेज आजतक न्यायालय के समक्ष पेश नहीं की है! वहीं सरकार द्वारा गठित एसआईटी (स्पेशल इन्वेस्टीगेशन टीम) ने मज़दूरों को निर्दोष करार दिया था।

18 जुलाई 2012 को प्रबन्धन अधिकारी की मौत के बाद यूनियन को ख़त्म करने के लिए मैनेजमेंट द्वारा षड्यन्त्रकारी तरीके से 546 स्थायी व 1800 ठेका मज़दूरों को निकाल दिया था और 148 मज़दूरों को जेल भिजवा दिया गया था। इस दौरान 2 मज़दूरों की मौत भी हो गयी थी। फिर सबूतों के अभाव में 5 साल जेल में बिताने के बाद 117 मज़दूरों को बाइज़्ज़त बरी कर दिया गया था। लेकिन यूनियन के 12 पदाधिकारियों और एक मज़दूर जिया लाल समेत 13 मज़दूरों को उम्रक़ैद की सज़ा सुनायी गयी। फिर 10 साल जेल में बिताने के बाद ज़मानत हासिल हुई। इसके बावजूद आज भी मीडिया हर जगह 18 जुलाई की वारदात के लिए मज़दूरों को दोषी और कम्पनी को 'बेचारा' दिखाने की कोशिश करता है। हालाँकि कम्पनी का सीओ इसे ख़ुद ही 'क्लास वॉर' (वर्ग युद्ध) बता रहा था! दरअसल मारुति का पूरा मामला ही पूँजीवादी न्याय व्यवस्था की पोलपट्टी खोल देने वाला प्रातिनिधिक मामला है। यह न्याय व्यवस्था नहीं बल्कि मज़दूरों-मेहनतकशों के लिए बेहद अन्यायपूर्ण व्यवस्था है जो पूँजीपति वर्ग के लूट और शोषण के अधिकार को ही न्याय और इंसाफ़ का पर्याय बन देती है।

ऐसा ही एक और फ़ैसला बीते 3 दिसम्बर को गुड़गाँव श्रम न्यायलय (हरियाणा) द्वारा सुनाया गया। कोर्ट ने बेलसोनिका यूनियन की पुन: मान्यता प्राप्त करने हेतु डाली गयी अपील को ख़ारिज कर दिया और बेशर्मी से अपने फ़ैसले को वाजिब ठहराया।

बेलसोनिका का मामला

हरियाणा मानेसर (गुड़गाँव) में स्थित बेलसोनिका ऑटो कम्पोनेंट्स बनाने वाली एक कम्पनी है जो मारुति सुज़ुकी के लिए कम्पोनेंट्स बनाती है। इसमें स्थायी मजदूरों की यूनियन ने 14 अगस्त 2021 को एक ठेका मज़दूर को यूनियन सदस्यता दी थी। इसके बाद से बेलसोनिका प्रबन्धन और श्रम विभाग के रजिस्ट्रार ने मिलकर यूनियन पर दबाव डालना और यूनियन पदाधिकारियों का उत्पीड़न करना शुरू कर दिया था। अन्ततः सितम्बर 2023 में यूनियन का पंजीकरण रद्द कर दिया गया था। इस फ़ैसले के ख़िलाफ़ दायर अपील के ज़रिये बेलसोनिका मज़दूर यूनियन ने अपनी क़ानूनी लड़ाई जारी रखी जिसका फ़ैसला 3 दिसम्बर 2025 को सुनाया गया। वैसे तो स्थायी मज़दूरों की किसी यूनियन द्वारा ठेका मज़दूरों को सदस्यता देने का मामला कम ही देखने को मिलता है और इन लिहाज से बेसोनिका यूनियन का यह कदम सराहनीय है।

कोर्ट ने भी खुलकर कम्पनी प्रबन्धन के पक्ष में फ़ैसला सुनाते हुए कहा कि "सहायक श्रम आयुक्त के कोर्ट ने ठीक ही कहा है कि ठेकेदार के कर्मचारी प्रिन्सिपल एम्प्लॉयर के कर्मचारी नहीं बन जाते, क्योंकि दोनों की नियुक्ति अथॉरिटी अलग हैं, इसलिए उनके हित भी अलग-अलग और असमरूप हैं, अतः वह एक ही संयुक्त ट्रेड यूनियन नहीं बना सकते। ठेकेदार और मैनेजमेंट अलग-अलग संस्थान हैं। अतः यूनियन पंजीकरण रद्द करने के, ऑर्डर में दख़ल देने का कोई आधार नहीं बनता और इसलिए अपील ख़ारिज की जाती है।..."

ट्रेड यूनियन एक्ट (1926) में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो स्थायी और अस्थायी/ठेका मज़दूरों को एक ही प्रतिष्ठान में एक ही यूनियन में होने से रोकता हो। साथ ही संविधान में अनुच्छेद 19 (जो कि यूनियन बनाने की स्वतंत्रता देता है) और टी.यू.ए (1926) के सेक्शन 4 के सब-सेक्शन (1) और सेक्शन 6 (ई) और 22 के प्रावधान भी इसकी मनाही नहीं करते हैं। मुख्यत: सेक्शन 4 (1) के अनुसार केवल वे ही कामगार यूनियन के पंजीकरण और सदस्यता के लिए आवेदन दे सकते हैं और सदस्य हो सकते हैं जो कामगार उसी संस्थान या इण्डस्ट्री से जुड़े हुए हैं। यानी यह कानून हर मज़दूर को यूनियन बनाने के अधिकार की इज़ाज़त देता है। दोनों जगह कहीं भी स्थायी और ठेका मज़दूर में कोई भेद का ज़िक्र नहीं है।

दूसरा, प्रबन्धन जिन मज़दूरों को ठेका मज़दूर कहता है वे वास्तव में ठेका मज़दूर है ही नहीं। वे नियमित प्रकृति का और तक़नीकी काम करते हैं यानी अधिकांश मज़दूर तो मशीन चलाने वाले आपरेटर हैं और वह कम्पनी प्रबन्धन की देखरेख में ही काम करते हैं। आमतौर पर उनकी भर्ती प्रक्रिया को भी प्रबन्धन द्वारा इन्टरव्यू लेकर पूरा किया जाता है। उल्टा बेलसोनिका कम्पनी प्रबन्धन परिसर में ठेका प्रथा उन्मूलन और विनियमन एक्ट (1970) का उल्लंघन खुलेआम कर रहा था। इस कानून के प्रावधान के तहत 240 दिन बाद स्थायी प्रकृति पर कार्यरत कामगार, स्थायी कामगार के तौर पर हक़ हासिल कर लेता है।

इसके अलावा सुप्रीम कोर्ट के कई फ़ैसलों में यह स्पष्ट किया गया है कि तीन साल के बाद किसी भी किस्म के अस्थायी काम को नियमित किया जाना चाहिए। सच तो यह है कि इसी श्रम विभाग की नाक के नीचे कम्पनियों कारख़ानों व वर्कशॉपों में मज़दूरों के अधिकारों का सालों से हनन कर रही हैं। यही कम्पनियाँ 'स्थायी काम के लिए स्थायी रोज़गार' और 'समान काम के समान वेतन' के अधिकार की धज्जियाँ उड़ाती रहीं हैं और श्रम विभाग गांधारी की तरह आँखों पर पट्टी बांधे यह सब होने देता है।

वैसे तो कायदे से होना यह चाहिए था कि श्रम विभाग द्वारा कम्पनी प्रबन्धन को स्थायी काम पर ठेका प्रथा लागू करने के लिए कटघरे में खड़ा करके सख्त कार्यवाही करनी चाहिए थी, लेकिन श्रम विभाग उल्टा पंजीकृत यूनियन को ही दोषी बता कर उसकी यूनियन मान्यता रद्द कर देता है! इससे साफ़ हो जाता है कि श्रम विभाग मालिकों के इशारों पर कैसे नाचता है। असल में इन मज़दूर-विरोधी फ़ैसले के ज़रिये कम्पनी प्रबन्धन, श्रम विभाग व सरकार का नापाक गठजोड़ मज़दूरों के सारे अधिकार छीनने पर आमादा है। ऐसे में अब इसे श्रम विभाग की जगह "पूँजी-विभाग" कह दिया जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगा, जो कारख़ाना मालिकों के मुनाफ़े में आने वाली हर अड़चन को दरकिनार करने के लिए प्रतिबद्ध है। वैसे भी नये लेबर कोड की चौथी संहिता यानी 'औद्योगिक सम्बन्ध संहिता' के तहत लेबर कोर्ट की समाप्ति और उसकी जगह पर औद्योगिक ट्राइब्यूनल लाने की घोषणा की जा चुकी है। अब तो श्रम विभाग व न्यायालय और खुलकर कम्पनियों व पूँजीपतियों के पक्ष में काम कर सकेंगे। "न्याय" और "अन्याय" का फ़ैसला भी इस पूँजीवादी व्यवस्था में पूँजीपतियों और उनके हितों को ध्यान में रखकर किया जाता है।

आज ऑटोमोबाइल सेक्टर में क़रीब 9 लाख मज़दूर अस्थायी तौर पर काम कर रहे हैं, जिनके लिए वास्तविक तौर पर श्रम क़ानून पहले ही पूरी तरह से लागू नहीं होते थे। लेकिन अब चार नये लेबर कोड आने के बाद तो यह स्थिति और भयावह हो जायेगी। अब ठेका प्रथा उन्मूलन और विनियमन एक्ट (1970) को नये लेबर कोड- औद्यौगिक सम्बन्ध संहिता, 2000 के जरिये समाहित कर लिया गया है और ठेका प्रथा को क़ानूनी रूप दे दिया गया है। अब नये लेबर कोड में फिक्स्ड टर्म एम्प्लॉयमेंट (निर्धारित अवधि रोज़गार) के तहत ठेका मज़दूरी को क़ानूनी मान्यता दे दी है। यानी इसे कम्पनियों को क़ानूनी तौर पर मज़दूरों को लूटने-खसूटने का लाइसेंस कहना ग़लत नहीं होगा।

इसलिए हमें यह बात अच्छे से समझ लेनी होगी कि सरकार से लेकर न्याय व्यवस्था तक पूँजीपतियों और उनके मुनाफ़े की सेवा में लगी हुई हैं। कोर्ट के इन उपरोक्त फ़ैसलों द्वारा तमाम मज़दूरों के सामने यह मिसाल पेश की जा रही है कि जो भी पूँजीवादी मुनाफ़े के तन्त्र को नुक़सान पहुँचाने का जुर्म करेगा उसे बख़्शा नहीं जायेगा। ऐसे में आज के दौर में मज़दूरों के पास संगठित होकर अपने अधिकारों को हासिल करने के लिए सड़क पर उतरकर लड़ने का ही रास्ता बचता है। यह मुनाफ़ाखोर व्यवस्था मज़दूरों का चाहे कितना भी दमन कर ले, पर मज़दूरों के प्रतिरोध करने की ऐतिहासिक ज़रूरत और ज़िद को नहीं तोड़ पायेगी।

कविता / क़ानून

लोहे के पैरों में भारी बूट
कन्धों से लटकती बन्दूक
क़ानून अपना रास्ता पकड़ेगा
हथकड़ियाँ डालकर हाथों में
तमाम ताक़त से उन्हें
जेलों की ओर खींचता हुआ
गुज़रेगा विचार और श्रम के बीच से
श्रम से फल को अलग करता
रखता हुआ चीज़ों को
पहले से तय की हुई
जगहों पर
मसलन अपराधी को
न्यायाधीश की, गलत को सही की
और पूँजी के दलाल को
शासक की जगह पर
रखता हुआ
चलेगा
मजदूरों पर गोली की रफ़्तार से
भुखमरी की रफ़्तार से किसानों पर
विरोध की ज़ुबान पर
चाकू की तरह चलेगा
व्याख्या नहीं देगा
बहते हुए ख़ून की
व्याख्या क़ानून से परे कहा जाएगा
देखते-देखते
वह हमारी निगाहों और सपनों में
ख़ौफ़ बनकर समा जाएगा
देश के नाम पर
जनता को गिरफ़्तार करेगा
जनता के नाम पर
बेच देगा देश
सुरक्षा के नाम पर
असुरक्षित करेगा
अगर कभी वह आधी रात को
आपका दरवाज़ा खटखटाएगा
तो फिर समझिए कि आपका
पता नहीं चल पायेगा
ख़बरों से इसे मुठभेड़ कहा जायेगा
पैदा होकर मिल्कियत की कोख से
बहसा जायेगा
संसद में और कचहरियों में
झूठ की सुनहली पालिश से
चमका कर
तब तक लोहे के पैरों
चलाया जायेगा क़ानून
जब तक तमाम ताक़त से
तोड़ा नहीं जायेगा

● गोरख पाण्डेय

रोज़गार मिशन नहीं, पक्के रोज़गार की गारण्टी चाहिए!

मोदी सरकार द्वारा ग्रामीण रोज़गार गारण्टी क़ानून (मनरेगा) को ख़त्म करने की चाल को नाकाम करो!

● क्रान्तिकारी मनरेगा मज़दूर यूनियन

16 दिसम्बर को केन्द्र सरकार ने लोकसभा में एक और मज़दूर विरोधी विधेयक पेश किया। लोकसभा में पास होने के बाद 18 दिसम्बर की आधी रात में यह राज्यसभा में भी ध्वनि मत द्वारा पास कर दिया गया। नवम्बर माह में ही चार श्रम संहिताओं को लागू करने की अधिसूचना जारी कर देश के मज़दूरों और कर्मचारियों पर सीधा हमला किया गया था। अब 'विकसित भारत – रोज़गार और आजीविका की गारण्टी मिशन (ग्रामीण) विधेयक, 2025 (VB-G RAM G)' लाकर ग्रामीण व खेतिहर मज़दूरों पर हमला किया जा रहा है। यह विधेयक 'महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारण्टी अधिनियम, 2005 (मनरेगा)' को स्थानापन्न करने के मक़सद से लाया गया है।

फ़ासीवादी भाजपा सरकार नाम बदलने की राजनीति का एक और उदाहरण पेश करते हुए न केवल मनरेगा योजना का नाम बदल रही है, बल्कि असल में उसकी अन्तर्वस्तु पर कुठाराघात कर रही है। 2014 में विशेष तौर पर बड़े पूँजीपतियों और आम तौर पर देश के पूँजीपति वर्ग के भारी समर्थन से सत्ता में आयी मोदी सरकार ने शुरू से ही अपने पूँजीपति-मालिकों के हितों के अनुसार नीतियाँ लागू की हैं। मौजूदा लोकसभा सत्र में मनरेगा को समाप्त करने की प्रक्रिया और चार श्रम संहिताओं (लेबर कोड) की अधिसूचना जारी करने का उद्देश्य पूरी तरह स्पष्ट है—शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में समूचे पूँजीपति वर्ग को मज़दूरों का मनमाने ढंग से शोषण करने की क़ानूनी छूट देना और मज़दूरों-कर्मचारियों के बचे-खुचे श्रम अधिकारों को भी ख़त्म कर देना।

मनरेगा को समाप्त करना और कृषि के पीक सीज़न में 60 दिनों की तथाकथित 'काम बन्दी' लागू करना, दरअसल धनी किसानों और ग्रामीण पूँजीपति वर्ग को सस्ते मज़दूरों की निरन्तर सप्लाई सुनिश्चित करने की योजना है। तथ्य यह साबित करते रहे हैं कि मनरेगा के चलते ग्रामीण मज़दूरों की सौदेबाज़ी की ताक़त बढ़ी थी और वे दिहाड़ी मज़दूरी को लेकर बेहतर मोल-भाव कर पा रहे थे। लेकिन मनरेगा के ख़त्म होने से और 60 दिनों के 'कार्य बन्दी' के बाद बेरोज़गार मज़दूरों को मजबूरी में कम मज़दूरी पर काम करने के लिए बाध्य किया जायेगा। यही मोदी सरकार की वास्तविक मंशा है—ग्रामीण और शहरी श्रम बाज़ार को पूँजीपतियों के पक्ष में पूरी तरह झुका देना।

गम्भीर बात यह है कि इस नये विधेयक को लाने से पहले केन्द्र सरकार ने मज़दूरों, ट्रेड यूनियनों और राज्य सरकारों से कोई परामर्श नहीं किया। ऊपर की लच्छेदार भाषा के पीछे सच्चाई यह है कि एक्ट की जगह योजना (स्कीम) लाने की इस राजनीति के पीछे असल मंशा माँग-आधारित क़ानून को ख़त्म कर उसे बजट-सीमित योजना में बदलना है, जिसमें सरकार की कोई क़ानूनी जवाबदेही नहीं होगी। दूसरा, ग्राम सभा और ब्लॉक स्तर पर निर्धारित होने वाले कामों में हस्तक्षेप के ज़रिये मोदी सरकार इस क़ानून को दरअसल वास्तविकता में निष्प्रभावी बनाने की साज़िश कर रही है। साथ ही, अब से मोदी सरकार यह अधिसूचित करेगी कि किस राज्य में काम होगा है और किन राज्यों में नहीं जो सीधे तौर पर भाजपा-शासित राज्यों को लाभ देगी।

अव्वलन, मनरेगा क़ानून स्वयं एक आधा-अधूरा क़ानून है, जो महज 100 दिन के रोज़गार की गारण्टी तक सीमित है। मनरेगा क़ानून में 100 दिन का रोज़गार ही अपने आप में मज़दूरों के साथ एक मज़ाक जैसा था क्योंकि 'रोज़गार' का अर्थ ही होता है ऐसा काम जो कोई भी व्यक्ति रोज़ करता हो। वास्तविक माँग तो वर्ष के 365 दिन पक्के रोज़गार की गारण्टी की होनी चाहिए। नये विधेयक में 125 दिन रोज़गार देने की बात कही जा रही है, हालाँकि यह भी केवल एक और नया जुमला है। हक़ीक़त यह है कि पिछले पाँच वर्षों में मनरेगा के तहत एक मज़दूर को औसतन सिर्फ़ 50.35 दिन ही काम मिला है। यह कोई निराधार दावा नहीं, बल्कि सरकार द्वारा संसद में दी गयी स्वीकारोक्ति है। जब आज मज़दूर को आधा काम भी नहीं मिल रहा, तो 125 दिन का ढोल पीटना मज़दूरों की आँखों में धूल झोंकने के अलावा कुछ नहीं है। इसलिए मोदी सरकार का यह नया दावा ज़मीन की सच्चाई से नहीं, बल्कि चुनावी और मीडिया-प्रचार की राजनीति से प्रेरित है। एक तरफ़ मनरेगा गम्भीर अनियमितताओं तथा भ्रष्टाचार का शिकार रहा है, दूसरी तरफ़ इसके तहत लगातार रोज़गार समाप्त किया जा रहा है। सरकार की मज़दूर-विरोधी नीतियों के चलते गाँवों में सड़क मरम्मत, स्कूलों और खेल मैदानों की देखभाल, तालाब–नहरों की सफ़ाई, श्मशान भूमि के रखरखाव जैसे अधिकांश कच्चे कार्य या तो बन्द कर दिये गये हैं या बेहद सीमित कर दिये गये हैं।

इसका नतीजा यह है कि मनरेगा के तहत रोज़गार लगभग समाप्ति की कगार पर पहुँच गया है। गाँवों में बढ़ती महँगाई के बीच मज़दूरों के लिए अपने परिवार का पालन-पोषण करना बेहद कठिन हो गया है। ऐसे हालात में मनरेगा ही ग्रामीण मज़दूरों के लिए एक अहम सहारा था, लेकिन सरकार अब, बजाय इसके बजट और कार्य दिवसों में बढ़ोतरी के, इस योजना को ही तिलांजलि दे रही है। ऐसे में जब ज़रूरत थी कि सरकार मनरेगा की कमियों-खामियों को दूर करके उसे 100 दिन की रोज़गार गारण्टी योजना से आगे बढ़ाते हुए सही एवं वास्तविक अर्थों में रोज़गार के अधिकार का क़ानून बनाती- यानी ग्रामीण और शहरी—दोनों क्षेत्रों में सभी मज़दूरों के लिए पक्का और साल भर का रोज़गार सुनिश्चित करने वाला क़ानून बनाती- तब मज़दूर विरोधी फ़ासीवादी मोदी सरकार ने मनरेगा योजना को ही निरस्त करने के लिए नया विधेयक पेश कर दिया।

मनरेगा तथा 'VB-G RAM G' के बीच बुनियादी अन्तर

मनरेगा एक सार्वभौमिक माँग-आधारित अधिकार है। यानी इसके तहत देश भर के ग्रामीण क्षेत्रों में एक श्रमिक को काम माँगने पर 15 दिनों के अन्दर रोज़गार देना अथवा रोज़गार न दे पाने की सूरत में बेरोज़गारी भत्ता देना बाध्यताकारी था। लेकिन अब नये विधेयक में रोज़गार की गारण्टी सार्वभौमिक नहीं रह गयी है, बल्कि गारण्टी का स्वरूप सार्वभौमिकता से बदलकर विवेकाधीन प्रावधानों में परिवर्तित कर दिया गया है। यह अब केन्द्र सरकार की अधिसूचना पर निर्भर होगा, जिन क्षेत्रों के लिए केन्द्र सरकार अधिसूचना जारी करेगी केवल उन्हीं क्षेत्रों में अब रोज़गार का अधिकार मिलेगा। यानी जिन इलाक़ों को केन्द्र अधिसूचित नहीं करेगा, वहाँ काम का कोई अधिकार नहीं रहेगा। विडम्बना है कि मनरेगा क़ानून को हटाकर लायी गयी यह योजना काम की गारण्टी देने का दावा तो करती है लेकिन इस बात की कोई गारण्टी नहीं देती कि वह गारण्टी वास्तव में लागू भी होगी।

मनरेगा में यदि तय समय में काम न मिले तो बेरोज़गारी भत्ता देना अनिवार्य था। लेकिन नयी योजना में बेरोज़गारी भत्ता देने का कोई स्पष्ट, बाध्यताकारी प्रावधान नहीं है, जिससे राज्य की जवाबदेही समाप्त हो जाती है। नयी योजना के तहत बजट आवंटन पर भी बड़ा हमला किया गया है। जहाँ मनरेगा में बजट मज़दूरों की माँग के अनुसार तय होता था, वहीं VB-G RAM G राज्यों के लिए तयशुदा "मानक आवंटन" थोपता है। इसका अर्थ हुआ, पहले किसी राज्य में वहाँ के श्रमिकों द्वारा जितना काम माँगा जाता था, उस अनुसार केन्द्र सरकार पैसा देने के लिए बाध्य थी। अब केन्द्र सरकार एक मानक आवंटन थोप देगी। यदि उस आवंटित राशि से अधिक काम माँगा गया तो अब केन्द्र सरकार की उसे लेकर कोई ज़िम्मेदारी नहीं होगी, यह काम अभ राज्य देखें, वरना श्रमिक कहीं और काम देख लें, उनके रोज़गार की गारण्टी सरकारें नहीं लेती है! तय बजट से ज़्यादा खर्च का बोझ राज्यों पर डालकर दरअसल अब रोज़गार के दिन घटाने की खुली छूट दी जा रही है।

पहले जहाँ केन्द्र सरकार पूरा खर्च वहन करती थी, अब वह खर्च में हिस्सेदारी करेगी। यानी एक हिस्सा केन्द्र सरकार देगी और एक हिस्सा राज्य सरकारों को देने के लिए कहा जायेगा। खर्च साझा करने का अनुपात अधिकांश राज्यों के लिए 60:40 कर दिया गया है, जिसमें केन्द्र सरकार की हिस्सेदार 60% है। अब वे राज्य जो पहले ही मनरेगा बजट के लिए उपेक्षित रहते थे (यानी अधिकतर ग़ैर-भाजपा शासित राज्य), वे अब किस तरह इस खर्च का वहन करेंगे समझा जा सकता है। राज्य सरकारें तो पहले ही इस दिशा में कोई खास दिलचस्पी नहीं लेती थीं। ऐसी स्थिति में राज्य सरकारें अब काम की माँग दर्ज ही नहीं करेंगे, ताकि खर्च न बढ़े। अन्ततोगत्वा इसका असर दूर-दराज़ के ग्रामीण श्रमिकों पर सबसे अधिक पड़ेगा।

मनरेगा के तहत क्या काम कराये जायेंगे यह तय करने का अधिकार ग्राम सभा और पंचायतों का था। अब ग्राम सभा और ब्लॉक लेवल पर निर्धारित होने वाले कामों में हस्तक्षेप के ज़रिये मोदी सरकार इस क़ानून को दरअसल वास्तविकता में निष्प्रभावी बनाने की साज़िश कर रही है। इसके अलावा अब मानरेगा के कामों के देख-रेख के लिए यूनियन या जन संगठनों के प्रतिनिधियों से बनी काउंसिल किसी मतलब की नहीं रहेगी। अब काउंसिल के अलावा एक अधिकारियों की कमिटी इस कार्यक्रम की देख-रेख करेगी और इसका अध्यक्ष मुख्य सचिव या अतिरिक्त मुख्य सचिव होगा।

नयी योजना के तहत अब श्रमिकों की बायोमेट्रिक हाज़िरी लगेगी। उन्हें आधार-आधारित भुगतान किया जायेगा। काम की सैटेलाइट से निगरानी होगी आदि, आदि। दरअसल यह तकनीक के नाम पर श्रमिकों का बहिष्करण होगा। बायोमेट्रिक प्रमाणीकरण, जियो-रेफरेंसिंग और डिजिटल निगरानी को अनिवार्य कर लाखों मज़दूरों को काम और मज़दूरी से बाहर किया जायेगा जिसके नतीजे NMMS और ABPS में पहले ही सामने हैं। यदि नेटवर्क नहीं रहा या मज़दूर का फिंगर प्रिंट मैच नहीं किया, तो उनकी मज़दूरी अटक जायेगी। ठेकेदार व सरकारी बाबू तकनीकी हवाला देकर अपना पल्ला झाड़ लेंगे। साथ ही, अब कार्यस्थल का समय 12 घण्टे का होगा जबकि नरेगा के तहत 8 घण्टे का था। तो इसका मतलब है कि मनरेगा के तहत जो कार्यदिवस पूर्वाह्न 9 बजे से अपराह्न 5 बजे तक का था, 'जी राम जी' में वह पूर्वाह्न 7 से अपराह्न 7 तक होगा।

इस योजना में एक और बड़ी राहत गाँवों के पूँजीपति फार्मरों और धनी किसानों के लिए है। मनरेगा साल भर काम की बात करता था। अब इसमें एक 'ब्लैकआउट' फेज़ दिया गया है जिसका लाभ निश्चित तौर पर बड़े व धनी किसानों को होगा। कृषि के चरम मौसम में 60 दिनों का काम निषेध होगा। यानी जिस समय मज़दूर मनरेगा कामों के बरक्स अपने दिहाड़ी के लिए मोल भाव कर सकते थे, अब उनसे यह मोल भाव करने की क्षमता छिनी जा रही है।

VB-G RAM G कोई सुधार नहीं, बल्कि स्त्री और ग्रामीण मज़दूरों के दशकों के संघर्ष से हासिल किये गये अधिकारों पर हमला है। जिस वक़्त चार लेबर कोड से शहरी व औद्योगिक मज़दूरों व कर्मचारियों को गुलामी की तरफ धकेला जा रहा है, उसी वक़्त ग्रामीण ग़रीबों के रोज़गार की सीमित गारण्टी भी ख़त्म की जा रही है। इसलिए हमें यह समझना होगा कि ग्रामीण और शहरी मज़दूरों के हक़-अधिकारों पर हो रहे इन हमलों की असली दुश्मन पूँजीपतियों की नुमाइंदगी करने वाली फ़ासीवादी मोदी सरकार है। ऐसे में, अब ज़रूरी है कि हम अपनी फ़ौलादी एकता बनाकर संगठित और निर्णायक जवाब दें। आज पूरा मज़दूर वर्ग यदि संगठित और एकजुट होकर खड़ा हो, तभी वह मोदी सरकार को यह स्पष्ट चेतावनी दे सकता है कि वह रोज़गार की गारण्टी (मनरेगा) को ख़त्म करने और मज़दूर-विरोधी श्रम संहिताओं को थोपने की हिमाक़त न करे। यदि हम इन मज़दूर-विरोधी कदमों के ख़िलाफ़ फ़ौरन एकजुट होकर संघर्ष शुरू नहीं करते, यदि हम अनिश्चितकालीन आम हड़ताल का रास्ता अपनाकर सरकार को ये फ़ैसले वापस लेने के लिए बाध्य नहीं करते, तो कल बहुत देर हो जायेगी!

देशभर में अनेक बीएलओ की मौत : ये एसआईआर के दबाव में होने वाली हत्याएँ हैं!

● प्रियम्बदा

वोटर सूची में संशोधन के लिये देश में समय-समय पर एसआईआर आयोजित करवाये जाते रहें हैं। लेकिन यह पहली बार हुआ है जब एसआईआर करने के दबाव में लोग इस हद तक परेशान कर दिये गये हों कि उन्हें अपनी जान लेने पर मजबूर होना पड़ रहा है। एसआईआर यानी 'स्पेशल इंटेंसिव रिविज़न' (SIR) में तमाम नियम-क़ायदों का उल्लंघन करते हुए चुनाव आयोग ने भाजपा सरकार की शह पर जिस फ़र्ज़ीवाड़े की शुरुआत की है वह लोगों की मौत का कारण बन रहा है। इसका खुलासा बड़े पैमाने पर तब हुआ जब ज़मीनी स्तर पर काम करने वाले बूथ लेवल ऑफिसर्स (BLO) ने अपनी स्थिति बयान की।

उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान, गुजरात, पश्चिम बंगाल से लेकर केरल, तमिलनाडु से यह ख़बर आनी शुरू हुई कि एसआईआर करने वाले प्राइमरी स्कूल के शिक्षकों से लेकर आँगनवाड़ीकर्मी अमानवीय काम के बोझ और मानसिक दबाव से गुज़र रहे हैं। कई लोगों के लिये यह दबाव इस क़दर बढ़ चुका था कि उन्हें अपनी जान तक लेने को मजबूर होना पड़ा। एसआईआर के कारण सिर्फ़ नवम्बर महीने में 26 से अधिक बीएलओ की मौत हो चुकी है। यह वह आँकड़ा है जो हमारे सामने आ गया जबकि कई ऐसी घटनाएँ तो दर्ज ही नहीं हुई या फिर दबा दी गयीं।

कई बीएलओ ने अपनी आत्महत्या का कारण सीधे तौर पर एसआईआर और उसकी आड़ में चल रही भाजपा सरकार की धाँधली को बताया है। उत्तर प्रदेश के गोंडा ज़िले में विपिन यादव नाम के जिस एसआईआर सुपरवाइज़र ने ख़ुदकुशी की, उसके परिवार वालों ने बताया कि उनपर लगातार अधिकारियों द्वारा इस बात का दबाव बनाया जा रहा था कि वह मतदाता सूची से कुछ नामों को हटाकर उनकी जगह फ़र्ज़ी नाम जोड़े, जिससे मना करने पर उन्हें लगातार डराया-धमकाया जा रहा था इसलिए अन्ततः परेशान होकर विपिन ने अपनी जान ले ली। ठीक ऐसी ही एक घटना उत्तरप्रदेश के फतेहपुर से आयी जहाँ 25 वर्षीय एक नौजवान ने अपनी शादी से एक दिन पहले आत्महत्या कर ली और अपनी आत्महत्या का कारण काम का अत्यधिक दबाव बताया। सुधीर कुमार नाम का यह युवक दलित परिवार से आता था जिसे काफ़ी मुश्किलें झेलने के बाद 2024 में सरकारी क्लर्क की नौकरी मिली थी। 25 नवम्बर को सुधीर की शादी तय थी जिसकी तैयारी के लिये वह लम्बे समय से छुट्टी के आवदेन दे रहा था मगर उसकी छुट्टी हर बार खारिज़ कर दी जा रही थी। 23 नवम्बर यानी रविवार को एसआईआर के सम्बन्ध में किसी "आधिकारिक मीटिंग" में न शामिल रह पाने की वजह से सुधीर को सस्पेंड कर दिया गया जिसकी सूचना मिलने पर वह टूट गया और आख़िर में उसने अपनी जान ले ली। पश्चिम बंगाल में भी एक महिला बीएलओ ने ख़ुद को फाँसी लगा ली और अपने सुसाइड नोट में यह लिखा कि वह एसआईआर से सम्बन्धित काम के दबाव को झेल पाने में असमर्थ है।

मध्यप्रदेश, गुजरात, उत्तरप्रदेश में बीएलओज़ (BLOs) के काम की स्थिति बेहद अमानवीय है। कोई हार्टअटैक से मर रहा है तो किसी का ब्रेन हैमरेज हो रहा है और कुछ लोग तो अपनी जान लेने पर ही मजबूर हो रहें हैं। भाजपा-शासित राज्यों में यह आँकड़ा सबसे अधिक है। देश के इतिहास में यह पहली बार हो रहा है जब बीएलओज़ पर FIR किये जा रहें हैं! नोएडा में 60 बीएलओ पर काम पूरा न करने का कारण बताते हुए केस दर्ज हुए हैं जिसमें अधिकांश या तो आँगनवाड़ी कार्यकर्ताएँ हैं या फिर प्राइमरी स्कूल के शिक्षक हैं जो पहले ही अपने विभागों के काम के बोझ तले दबे होते हैं।

चुनाव आयोग के ही एक आँकड़े को देखें तो भाजपा सरकार द्वारा लादे गये काम के बोझ की भयानक स्थिति हमारे सामने साफ़ हो जाती है। ECI के अनुसार, 12 राज्यों/केन्द्र शासित प्रदेशों (UTs) में 50.97 करोड़ मतदाताओं के नाम वेरीफाई करने के लिये 5.32 लाख BLOs मौजूद हैं। इसके अनुसार एक BLO को एक महीने में कम से कम 956 मतदाताओं के नाम को वेरीफाई करना होगा यानी अगर महीने में 30 दिन भी रोज़ काम किया जाये तो हर दिन कम से कम 31-32 लोगों के घर पहुँच कर उनके कागज़ात देखना, फ़ॉर्म भरना इत्यादि सभी काम करने होंगे। अगर हम यह भी मान लें कि प्रत्येक व्यक्ति पर बीएलओ को औसतन आधा घण्टा ही लगता है तब भी 32 लोगों के लिये उसे प्रतिदिन 16 घण्टे काम करना होगा तब जाकर कहीं वह अपना काम पूरा कर पायेगा। लेकिन इतनी अनुकूल परिस्थितियाँ असल में होती नहीं हैं क्योंकि कई बार तो लोगों के पास कागज़ात पूरे नहीं होते इसलिए उनके पास बार-बार जाना पड़ता है या फिर हर बार सभी मतदाता घर पर मिलें ही यह भी ज़रूरी नहीं होता। मतदाताओं तक फ़ॉर्म पहुँचाने से लेकर उन्हें इकट्ठा करने और उनकी समस्याओं को हल करने का काम दिये गये समय में कर पाना शायद ही किसी बीएलओ के लिये सम्भव हो! इसलिए इस अमानवीय कार्यास्थिति के ख़िलाफ़ जगह-जगह लोगों का गुस्सा भी फूट रहा है।

गुजरात में मतदाता सूचियों के एसआईआर के दौरान 250 प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों ने 27 नवम्बर को अहमदाबाद के खोखरा स्थित एक डेटा अपलोडिंग सेण्टर पर बढ़ते वर्कलोड से परेशान होकर धरना-प्रदर्शन शुरू कर दिया। उनकी मुख्य माँग थी कि काम के दबाव को कम किया जाये, सर्वर व एप्लिकेशन की समस्या का समाधान किया जाये और एफ़आईआर व केस की धमकी देने वाले अधिकारियों पर कार्रवाई की जाये। पश्चिम बंगाल में भी काम के बढ़ते दबाव से परेशान बीएलओ ने विरोध प्रदर्शन किये।

लेकिन इस पूरी परिस्थिति को अनदेखा करते हुए भाजपा सरकार जिस हड़बड़ी में एसआईआर करवा रही है उससे कई सवाल हमारे सामने खड़े होते हैं। मसलन एसआईआर इतनी जल्दबाज़ी में करवाने के पीछे क्या कारण है? आख़िर भाजपा सरकार की मंशा क्या है? इससे किसका भला होगा? बेहिसाब काम के दबाव में हो रही इन मौतों का ज़िम्मेदार कौन है?

एसआईआर कुछ और नहीं बल्कि भाजपा सरकार द्वारा शुरू किया गया एक नया घोटाला है जिसके पीछे इनकी मंशा यही है कि चुनाव की समूची प्रणाली को ही बेअसर बना

(पेज 8 पर जारी)

'शान्ति' विधेयक – परमाणु ऊर्जा के निजीकरण की दिशा में एक ख़तरनाक क़दम

कॉरपोरेट मुनाफ़े के लिए मानव जीवन को ख़तरे में डालने का बेशर्म दस्तावेज़

(पेज 1 से आगे)

आपूर्तिकर्ताओं को क़ानूनी संरक्षण प्रदान किया गया है। विधेयक में कहा गया है कि संचालक "निर्माणाधीन परमाणु संयंत्र, उसी स्थल पर निर्माणाधीन किसी अन्य परमाणु संयंत्र सहित, उसी स्थल पर स्थित ऐसी सम्पत्तियों जिनका उपयोग ऐसे संयंत्रों के सम्बन्ध में किया जाता है या किया जाना है, या परमाणु दुर्घटना के समय परमाणु सामग्री ले जाने वाले परिवहन के साधनों" को हुए नुकसान के लिए **उत्तरदायी नहीं होगा।** यह प्रावधान निर्माण चरण और परिचालन के दौरान पैदा हुई खराबियों और विफ़लताओं के लिए नियोक्ता की ज़िम्मेदारी को प्रभावी रूप से समाप्त कर देता है।

इसके अतिरिक्त, मोदी सरकार ने किसी गम्भीर परमाणु दुर्घटना की स्थिति में ऑपरेटरों से वसूले जा सकने वाले मुआवज़े की अधिकतम सीमा 300 मिलियन स्पेशल ड्रॉइंग राइट्स (SDR) तय की है, जो दिसम्बर 2025 तक लगभग 3,690 करोड़ रुपये के बराबर है। यह राशि परमाणु आपदा की लागत को पूरा करने के लिए अपर्याप्त है या यूँ कहें कि 'ऊँट के मुँह में ज़ीरे' के बराबर है। ऐसी आपदाओं के पारिस्थितिक, मानवीय और आर्थिक प्रभाव अरबों में होते हैं। 3,690 करोड़ की राशि इसके नुकसान के एक अंश की भी भरपाई नहीं कर पायेगी। चेर्नोबिल और फ़ुकुशिमा इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं।

इसके अलावा, सूचना का अधिकार (RTI) अधिनियम को लगातार कमज़ोर करने की अपनी नीति के अनुरूप, मोदी सरकार ने "राष्ट्रीय सुरक्षा" का हवाला देते हुए SHANTI विधेयक को RTI के दायरे से बाहर रखा है। इससे कुछ गम्भीर प्रश्न उठते हैं। जैसे - जब पूरी आपूर्ति श्रृंखला का निजीकरण तेज़ी से किया जा रहा है , तब किसकी "राष्ट्रीय सुरक्षा" की रक्षा की जा रही है? **राज्य अपने ही नागरिकों, जिनके जीवन को ख़तरे में डाला जा रहा है, की तुलना में मुनाफ़ा कमाने वाली कम्पनियों को प्राथमिकता क्यों दे रहा है?** सुरक्षा और पर्यावरण सम्बन्धी जानकारी को पूरी तरह से गुप्त रखकर, यह विधेयक प्रभावी रूप से निजी प्रतिष्ठानों को जवाबदेही से मुक्त कर देता है।

इस विधेयक में परमाणु क्षेत्र के कर्मचारियों को श्रम सुरक्षा क़ानूनों के दायरे से बाहर रखा गया है। इसमें उन कर्मचारियों के लिए कार्यस्थल सुरक्षा, दुर्घटना क्षतिपूर्ति या लागू किये जाने योग्य सुरक्षा मानकों के बारे में कोई विस्तृत प्रावधान नहीं है जो कम्पनियों के मुनाफ़े के लिए अपनी जान जोख़िम में डालते हैं। विधेयक में एक स्वतंत्र परमाणु सुरक्षा प्राधिकरण की स्थापना का दावा तो किया गया है, लेकिन इसकी संरचना या कार्यप्रणाली के बारे में कोई स्पष्टता नहीं दी गयी है।

इसके विपरीत विधेयक में लगभग किसी भी पूँजी सम्पन्न संस्था को परमाणु रिएक्टर चलाने की अनुमति दे दी गयी है। इसे 'स्मॉल मॉड्यूलर रिएक्टरों' (SMR) को बढ़ावा देने के नाम पर उचित ठहराया जा रहा है, जबकि ये बड़े रिएक्टरों से किसी भी सूरत में अधिक सुरक्षित नहीं हैं। विकिरण और दुर्घटनाओं का जोखिम मूल रूप से वही रहता है।

तेज़ी से लाइसेंस देने की प्रक्रिया को सुगम बनाने और पर्याप्त पूँजी रखने वाली किसी भी संस्था को ऐसे रिएक्टर चलाने की अनुमति देने के ज़रिये, जोकि पारिस्थितिक तंत्र को नष्ट कर सकते हैं, पीढ़ियों तक हज़ारों लोगों की जान ले सकते हैं और विकिरण-जनित बीमारियों के कारण पूरे शहरों को रहने योग्य नहीं छोड़ सकते, सरकार ने एक बार फिर यह साबित कर दिया है कि पूँजीवादी व्यवस्था और भारत की फ़ासीवादी मोदी सरकार का एकमात्र लक्ष्य पूँजीपतियों के मुनाफ़े को अधिकतम सम्भव बढ़ाना है।

इस विधेयक में एक और अमानवीय प्रावधान यह है कि परमाणु दुर्घटना के 10 से 20 वर्षों के भीतर ही अपराधों की समय-सीमा (statute of limitations) समाप्त हो जाती है, जिसके बाद कोई आपराधिक मुक़दमा नहीं चलाया जा सकता। यह वैज्ञानिक रूप से भी असंगत है, क्योंकि विकिरण से जुड़ी बीमारियाँ और मौतें अक्सर दशकों बाद और पीढ़ियों तक सामने आती हैं। यह प्रावधान सुनिश्चित करता है कि कॉरपोरेट अपराधी दीर्घकालिक चिकित्सीय और आपराधिक ज़िम्मेदारी से बच निकलें और लोगों की ज़िन्दगियाँ, ज़मीन, पारिस्थितिकी तंत्र और आने वाली पीढ़ियों का भविष्य बर्बाद करते रहें।

सरकार यहीं नहीं रुकती है। कॉरपोरेट हितों की और अधिक रक्षा करने के लिए, यह विधेयक केवल केन्द्र सरकार या उन संस्थाओं जो कि "केन्द्र सरकार या परमाणु ऊर्जा नियामक बोर्ड" द्वारा विधिवत अधिकृत हों, को आपराधिक शिक़ायत दर्ज करने की अनुमति देता है। इसका अर्थ यह है कि प्रभावित समुदाय, व्यक्तिगत तौर पर पीड़ित लोग, नागरिक समाज संगठन और यहाँ तक कि राज्य सरकारें भी स्पष्ट आपराधिक लापरवाही के मामलों में भी सीधे आपराधिक कार्रवाई शुरू नहीं कर सकती है।

भोपाल गैस त्रासदी इस सच्चाई का एक भयावह उदाहरण है कि ऐसी आपदाएँ दुर्घटनाएँ नहीं होतीं, बल्कि पूँजीपतियों द्वारा लागत में कटौती और कॉरपोरेट लापरवाही को राजनीतिक संरक्षण देने का परिणाम होती हैं। भाजपा से लेकर कांग्रेस तक, विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा कॉरपोरेट अपराधियों को दिया गया संरक्षण यही दर्शाता है कि पूँजीवादी व्यवस्था और उसकी हिफ़ाज़त करने वाली तमाम सरकारों और चुनावबाज़ पार्टियों को देश के नागरिकों के जीवन की कोई परवाह नहीं है।

आज देश के आम नागरिकों और महनतकशों को इस जनविरोधी कानून को तत्काल वापस लेने की माँग करनी चाहिए जो मानव जीवन और पर्यावरण दोनों के लिए विनाशकारी और घातक है। एक सच्चे अर्थों में जन पक्षधर व्यवस्था के अन्तर्गत किसी भी वास्तविक पर्यावरणीय कार्रवाई में कॉरपोरेट या निजी मुनाफ़े से ऊपर मानव कल्याण और सुरक्षा को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। लेकिन हर बीतते दिन के साथ यह और स्पष्ट होता जा रहा है कि मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था में मुनाफ़ा-प्रेरित लालच और पूँजी के हितों को लगातार मानव जीवन से ऊपर रखा जाता है। आज मज़दूर वर्ग को पर्यावरण के मसले पर भी सरकार से जवाबदेही की माँग करनी चाहिए और इस मसले को वर्ग संघर्ष के मोर्चे का महत्वपूर्ण प्रश्न बनाना चाहिए। एक ऐसे सुरक्षित, स्वच्छ पर्यावरण के लिए संघर्ष जो सार्वजनिक स्वास्थ्य और सुरक्षा से समझौता न करे – यह मज़दूर आन्दोलन के चार्टर का एक अहम एजेंडा होना चाहिए।

पूँजीपतियों के मुनाफ़े के लिए अरावली पर्वत श्रृंखला को तबाह करने पर सुप्रीम कोर्ट की मुहर

● विवेक

एक विचित्र से प्रतीत होने वाले घटना क्रम में सुप्रीम कोर्ट ने अपने एक फ़ैसले में केंद्र सरकार की एक कमिटी द्वारा प्रस्तावित अरावली की पहाड़ियों की संशोधित परिभाषा को सही ठहराया है। इस नयी संशोधित परिभाषा के अनुसार केवल वही भू-आकृतियाँ अरावली की पहाड़ियाँ मानी जायेंगी, जो अपने स्थानीय भू-परिवेश से कम से कम 100 मीटर ऊँची हों, तथा ऐसी दो या अधिक पहाड़ियों के समूह, जो एक-दूसरे से 500 मीटर की दूरी के भीतर स्थित हों, अरावली पर्वत श्रेणी का हिस्सा माने जायेंगे।

एक आधिकारिक रिपोर्ट के मुताबिक, अरावली की क़रीब 90 फ़ीसदी भू संरचनाएं (या पहाड़ियाँ) 100 मीटर की इस सीमा से नीचे आती हैं, जिसकी वजह से अब उनको मिलने वाली क़ानूनी सुरक्षा एक तरह से ख़त्म हो चुकी है। परिणामस्वरूप, अरावली पर्वत श्रृंखला का एक बड़ा भाग चन्द मुट्ठीभर धन्नासेठों के मुनाफ़े के लिए दोहन किये जाने की कगार पर आ चुका है। भारतीय वन सर्वेक्षण ने यह माना है कि अरावली श्रेणी का केवल 8 से 10 फ़ीसदी हिस्सा ही 100 मीटर की इस नयी सीमा से ऊपर है, इसकी वजह से अरावली के संवेदनशील पारिस्थितिकी तंत्र का अधिकांश भाग खनन, निर्माण और रियल एस्टेट जैसे उपक्रमों द्वारा दोहन के लिए खुल चुका है।

अरावली निम्न व मध्यम ऊँचाई के पहाड़ियों की श्रृंखला है जो भारत के उत्तर पश्चिमी भू भाग में फैली हुई है। यह दुनिया के सबसे प्राचीन मोड़दार पर्वतीय तंत्रों में से एक है, जिसका निर्माण प्राक कैंब्रियन युग (आज से 2 अरब साल पहले) के दौरान हुआ था और यहाँ मौजूद घास के मैदान, घाटियाँ और वन एक जटिल और संवेदनशील परिस्थितिकी तंत्र का निर्माण करते हैं। यह पर्वत श्रेणी पेड़-पौधों व अन्य जीवों की अनेकों प्रजातियों का आश्रय स्थल है। खुद केन्द्र सरकार की रिपोर्ट और सुप्रीम कोर्ट के हालिया फ़ैसले में यह बात मानी गयी है कि अरावली पर्वत श्रेणी मरुस्थलीकरण और थार रेगिस्तान को पूर्व दिशा में गंगा के मैदानों, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश की ओर बढ़ने से रोकता है। इसके अतिरिक्त अरावली प्रदूषण से ग्रस्त राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के लिए हरित फेफड़ों का काम करता है, और सिर्फ़ इतना ही नहीं, यह प्रदूषित भू जल के शुद्धिकरण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

अरावली का महत्व

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि अगर अरावली के पहाड़ और उसके घने जंगलों को नष्ट कर दिया गया तो इसके भयावह परिणाम उत्तर भारत के बड़े हिस्सों को भुगतने होंगे। दिल्ली, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के कई हिस्से धूल के मैदानों में तब्दील हो जायेंगे। यहाँ तक कि हिमाचल प्रदेश और उत्तराखण्ड जैसे पर्वतीय राज्य भी इससे अछूते नहीं रहेंगे। थार मरुस्थल से आने वाली गर्म, शुष्क हवाओं के लिए बाधा बनकर उत्तर भारत के लिए अरावली जलवायु नियंत्रक की भूमिका निभाता है। बड़े पैमाने पर अरावली के जंगलों की कटाई और खनन के कारण यह प्राकृतिक बैरियर ख़त्म होता जायेगा, जिससे नर्म और शुष्क वायु धारा आगे की ओर बढ़ेगी। इससे दक्षिण पश्चिम मानसून पर नकारात्मक असर पड़ेगा और हिमालय के पश्चिमी व मध्य भागों में जमने वाली बर्फ़ की मात्रा भी घटेगी। अगर बर्फ़ कम जमेगी, तो ग्लेशियर भी कम होते जायेंगे, जिससे हिमालय से निकलने वाली नदियों जैसे गंगा और यमुना पर भी संकट आएगा।

इसके अतिरिक्त, अगर अरावली से वनावरण नष्ट हो गये तो खनन और मृदा अपरदन के कारण धातु व खनिज युक्त धूल कणों की बड़ी मात्रा मुक्त होगी। ये धूल कण बिना किसी बाधा के हिमालय के हिमाच्छादित हिस्सों और ग्लेशियरों पर बैठने लगेंगे, जिससे बर्फ़ीली सतह की परावर्तन क्षमता घट जायेगी। परिणाम स्वरूप ऊष्मा का अवशोषण बढ़ता जायेगा और ग्लेशियर पिघलने की गति में तेज़ी आयेगी – ऐसी परिघटना पिछले कुछ समय से हिमालय में लगातार देखने को मिल रही है। इतना ही नहीं, अरावली के जंगलों के नष्ट होने से उत्तर भारत के इलाकों में तापमान में वृद्धि होगी। यह बढ़ती गर्मी उत्तर में हिमालय के निचले इलाकों को भी प्रभावित करेगी। बढ़ते तापमान से ग्लेशियर पिघलेंगे, जिससे हिमनद झीलों के जलस्तर में अचानक हुई वृद्धि से बाढ़ की स्थिति पैदा होगी और संवेदनशील पर्वतीय पारिस्थितिकी तंत्र पर इसका इतना भयावह असर होगा, जो कि अपरिवर्तनीय होगा। सीधे शब्दों में कहें तो हिमालय के निचले हिस्सों में तबाही मच जायेगी। अभी जो डिस्टोपियाई विज्ञान कथा जैसा प्रतीत हो रहा है, वह जल्द ही यथार्थ में तब्दील हो जायेगा।

देश की प्राकृतिक सम्पदा की लूट आसान करने के लिए क़ानूनों में बदलाव की क़वायद

अरावली के पर्वतों की परिभाषा बदलकर इसके जंगलों को काटने का खुला क़ानूनी परमिट देने की घटना को किसी एकल, पृथक या आकस्मिक घटना के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। यह भारतीय राज्यसत्ता के लम्बे ऐतिहासिक पथ का ही हिस्सा है, जिसने शासक वर्गों के हितों को ध्यान में रखते हुए, मध्य और पूर्वी भारत, पश्चिमी घाट और हिमालय के क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर जंगलों की कटाई और खनन की गतिविधियों को अंजाम देने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी है। राज्यसत्ता के संरक्षण में और पूँजी के हितों में की गयी इन पर्यावरण-विरोधी कार्यवाहियों के कारण बड़े पैमाने पर आदिवासियों और अन्य वनाश्रित समुदायों को अपने क्षेत्रों से बेदखल होना पड़ा है और वहाँ के पारिस्थितिकी तंत्र को भी नुकसान उठाना पड़ा है।

लेकिन, हालिया वर्षों में मोदी सरकार ने इस परिपाटी को नये पर्यावरण-विरोधी नीतियों और कानूनों को लाकर और भी तीव्र कर दिया है, जिसके तहत पारिस्थितिकी तंत्र के संरक्षण के बरक्स संरचनागत विकास के नाम पर प्राकृतिक सम्पदा के दोहन की गतिविधियों को प्रश्रय दिया जा रहा है। फॉरेस्ट कंजरवेशन एक्ट 2023, ड्राफ्ट इनवायरमेंट इंपेक्ट नोटिफिकेशन, 2020 और खनन के लिए कोल ब्लॉक के आवंटन जैसे केन्द्र सरकार द्वारा लिए गये फ़ैसले मौजूदा सरकार की मंशा को दर्शाते है। समेकिकता में देखा जाये तो, इन नयी नीतियों ने पर्यावरण के बचाव के नियामकों को कमज़ोर कर दिया है और बड़े पैमाने पर जंगलों की कटाई से लेकर दूसरे गहन पूँजी निवेश वाली परियोजनाओं के क्रियान्वयन को आसान बना दिया है। इस अप्रोच से पर्यावरण पर पड़ने वाले दुष्परिणाम हसदेव, तालाबीरा और देहिंग पटकाई के उदाहरणों के ज़रिये हमारे सामने है, जहाँ पर्यावरनीय विनाश के साथ-साथ बड़े पैमाने पर लोगों का विस्थापन भी हुआ है।

हर गुजरते दिन के साथ, मोदी सरकार ऐसी नीतियाँ लेकर आ रही है, जिससे इस संकट ग्रस्त पूँजीवादी व्यवस्था में कृत्रिम और तात्कालिक तौर पर ही सही पूँजीपतियों की मुनाफ़े की दर बनी रहे। इसके लिए जैव विविधता संरक्षण के नियामकों को कमज़ोर करना, किसी क्षेत्र की प्राकृतिक सम्पदा का दोहन करने को आसान बनाना, सबसे माकूल रणनीति रही है। लेकिन, इस मुनाफ़ा केन्द्रित विकास मॉडल का सबसे बड़ा भुगतभोगी बहुसंख्यक मेहनतकश तबका ही रहा है, जिसे इस कभी न रुकने वाले पर्यावरणीय दोहन की बड़ी कीमत चुकानी पड़ती है।

और अन्त में...

आज, न सिर्फ़ दिल्ली बल्कि उत्तर भारत का एक बड़ा हिस्सा गैस चैंबर बन चुका है, जहाँ आम नागरिकों का दम धुंध और धुएं की घनी चादर के तले घुट रहा है और उनकी जीवन प्रत्याशा घटती जा रही है। ऐसे समय में, सुप्रीम कोर्ट का यह फ़ैसला जिसमें अरावली को पुनर्व्याख्यायित कर उसके दोहन को कानूनी वैधता प्रदान करता है, सरकार की पर्यावरण-विरोधी नीतियों के ही समर्थन में जाकर खड़ा होता है।

आज यह फ़ासीवादी राज्यसत्ता पूँजीपतियों के हितों को ध्यान में रखते हुए प्राकृतिक सम्पदा के दोहन को कानूनी वैधता प्रदान करने के लिए नये कानून बनाने से भी नहीं हिचक रही है। चाहे दिल्ली में रेखा गुप्ता के नेतृत्व वाली सरकार का सैकड़ों पेड़ों को काटने का आदेश हो या बिहार में अदानी को एक रु की दर से 1050 एकड़ ज़मीन को लीज़ पर देने का मामला हो - हम ऐसी घटनाओं को हर दिन होता हुआ देख रहें हैं।

यह विडंबना ही है कि रेखा गुप्ता के नेतृत्व वाली दिल्ली सरकार ने खुद यह माना है कि अरावली के पहाड़ों पर हो रहे अवैध खनन, निर्माण और डंपिंग के कारण मरुस्थलीकरण का खतरा बढ़ा है। लेकिन अपने कपट और पाखण्ड की दशकों पुरानी विरासत को ज़िन्दा रखते हुए भाजपा की कथनी और करनी में अन्तर ठीक उसी तरह स्पष्ट है जैसे दिल्ली और स्वच्छ वायु में!

सुप्रीम कोर्ट का फ़ैसला प्रथम दृष्टया पारिस्थितिकी तंत्र के संरक्षण के सम्बन्ध में बहुत कुछ सकारात्मक कहता हुआ प्रतीत होता है लेकिन अन्त में इन सारी बातों का कोई अर्थ नहीं निकलता। इस फ़ैसले में कई बार पारिस्थितिकी तंत्र के संवदेनशील होने और उसके संरक्षण की बात की गयी है, लेकिन फिर भी अपने अन्तिम निष्कर्ष में इन अति प्राचीन पहाड़ों से उनके वैधानिक रक्षा के प्रावधानों को ही समाप्त कर इन्हें बाज़ार की शक्तियों के हवाले कर दिया गया है। हरियाणा के उदाहरण से हम सब परिचित हैं, जहाँ अरावली श्रेणी के एक हिस्से के नष्ट होने के कारण भू जल के स्तर में गिरावट हुई है, मरुस्थलीकरण बढ़ा है और बड़े पैमाने पर जैव विविधता का विनाश हुआ है।

अगर हम आज इन घटनाओं से संबंधित उपलब्ध आंकड़ों का विश्लेषण करें तो हम पाएंगे कि पर्यावरण-विरोधी इन अपराधों का सबसे अधिक प्रभाव मेहनतकश जनता पर ही पड़ा है। चूँकि पारिस्थितिकी तंत्र को बचाने की लड़ाई को, उस पूँजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष से अलग करके नहीं देखा जा सकता है, जिसका एक मात्र उद्देश्य अपना मुनाफ़ा बढ़ाना है, इसलिए अब वक़्त आ चुका है कि लोग इसके लिए एकजुट होकर, ऐसे हरेक पर्यावरण-विरोधी फ़ैसले का विरोध करें।

हमारा जीवन उस हवा पर निर्भर करता है, जिसमें हम साँस लेते है, उस पानी पर निर्भर करता है, जिसे हम पीते हैं और उस खाद्यान्न पर निर्भर करता है, जिसका हम सेवन करते हैं। जब इन तीनों को सोचे-समझे तरीके से नष्ट किया जाता रहे, लोगों को साफ हवा और स्वच्छ पानी भी नसीब न हो, खाने का अनाज तक प्रदूषित हो जाये, तब ऐसे हालात में हम चुप नहीं बैठ सकते हैं। हमें आगे आकर अपने पर्यावरण को बचाने के इस संघर्ष में अपनी भूमिका चुननी होगी। पारिस्थितिकी तंत्र को बचाना अब कोई विकल्प नहीं, बल्कि अपने अस्तित्व को बचाये रखने का प्रश्न बन चुका है! इसलिए, जनस्वास्थ्य और पारिस्थितिकी तंत्र के सन्तुलन की कीमत पर पूँजीवादी मुनाफ़ाखोरी की मशीनरी को प्रश्रय देने वाली वाली इस पर्यावरण-विरोधी फ़ासीवादी सत्ता के ख़िलाफ़ एक सतत और निरंतर संघर्ष आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है। अरावली के वर्तमान मुद्दे पर आज हमारी यह तात्कालिक माँग होनी चाहिए कि अरावली पर्वत श्रेणी की परिभाषा में कोई बदलाव नहीं किया जाये और अरावली में हो रहे अवैध खनन पर तत्काल रोक लगा कर, इसके संरक्षण के लिए वैज्ञानिक आधार पर कार्यक्रम चलाये जाये।

‘इण्डिगो संकट’ मज़दूर वर्ग के अमानवीय पूँजीवादी शोषण का नया ज्वलन्त उदाहरण है!

पायलट-विमानकर्मियों के हितों और यात्रियों की सुरक्षा को ताक पर रखकर मोदी सरकार की पूँजीपतियों के प्रति वफ़ादारी एक बार फिर हुई ज़ाहिर!

● केशव

विगत 1 दिसम्बर से देशभर में हज़ारों उड़ानें प्रभावित रही हैं। 3 दिसम्बर से 9 दिसम्बर तक पूरे भारत में इण्डिगो एयरलाइन्स की सैकड़ों फ़्लाइटें रद्द हो गयीं। इसका कारण था रेस्ट पीरियड के नये नियमों का लागू होना जिसकी वजह से पायलट पहले से तय फ्लाइट्स उड़ाने के लिए उपलब्ध नहीं थे। ज्ञात हो की विमानन सेक्टर में लगभग 65 प्रतिशत हिस्सेदारी रखने वाला और एशिया का दूसरा सबसे बड़ा एयरलाइन इण्डिगो इस सेक्टर एक इजारेदार पूँजीपति की भूमिका में है। लम्बे समय से एयरलाइन के स्टाफ़ और पायलट कामों के बढ़ते दबाव को रेखांकित भी करते रहे थे और इण्डिगो अपना अकूत मुनाफ़ा इन्हीं विमानकर्मियों के अमानवीय पूँजीवादी शोषण के दम पर पीट रहा था।

ग़ौरतलब है कि इण्डिगो में काम करने वाले कर्मचारी और पायलट अपने यूनियनों के माध्यम से अपनी जायज़ माँगों को लेकर सरकार और इण्डिगो के ऊपर काफ़ी पहले से दबाव बना रहे थे। राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय उड़ानों की संख्या को मिलाकर प्रतिदिन 2,300 से अधिक उड़ान भरने वाले इण्डिगो के पास न तो पर्याप्त क्रू (कर्मचारी) हैं और न ही पायलट। इसकी वजह से एक-एक पायलट और कर्मचारी पर कामों का अतिरिक्त बोझ आ रहा है। अन्तरराष्ट्रीय मानकों के हिसाब से भी ये कर्मचारी और पायलट अतिरिक्त काम करने को मजबूर हैं। नाइट शिफ़्ट में एक पायलट को 6 लैण्डिंग करनी पड़ती है। दो उड़ानों के बीच में उन्हें अपर्याप्त आराम मिलता है। इसके साथ ही इस क़िस्म के कई कामों में सीधे-सीधे अन्तरराष्ट्रीय मानकों का उल्लंघन किया जा रहा है, जिससे न केवल पायलट और कर्मचारियों के स्वास्थ्य को नुक़सान हो रहा है, बल्कि हर दिन हवाई जहाज से सफ़र करने वाले लाखों लोगों की सुरक्षा से भी समझौता किया जा रहा है।

जनवरी-मई 2024 के दौरान कई विमानन दुर्घटनाओं के मद्देनज़र सरकार द्वारा फ़्लाइट ड्यूटी टाइम लिमिटेशन (एफ़डीटीएल) में कुछ संशोधन अधिसूचित किये गये थे। हालाँकि इण्डिगो को सीमित पायलट संख्या के साथ काम करने की इजाज़त दी गयी जिससे पायलटों के काम के घण्टे दिसम्बर 2025 तक बढ़ गये थे। यह बताने की भी ज़रूरत नहीं है की पायलटों सहित सभी कर्मचारियों पर काम का बोझ बढ़ाकर इण्डिगो ज़्यादा मुनाफ़ा कमाने के लिए यात्रियों और विमानकर्मियों की जान ख़तरे में डाल रहा था। इण्डिगो प्रबन्धन द्वारा नियमों को लागू न करना कोई चूक नहीं थी बल्कि मोदी सरकार के समर्थन से लिया गया एक सोचा-समझा फ़ैसला था जो “धन्धे की आज़ादी” के अनुरूप था! बिना मोदी सरकार की मदद और आपराधिक अनदेखी के इण्डिगो के लिए इस तरह नियमों का सरेआम उल्लंघन करना सम्भव ही नहीं था।

इस वर्ष अप्रैल के महीने में यूनियनों के दबाव में दिल्ली उच्च न्यायालय ने इण्डिगो को एफ़डीटीएल की नियमावली को लागू करने का आदेश भी दिया था। न्यायालय द्वारा इसे दो फ़ेज़ में लागू करने की बात की गयी थी। पहला फेज़ 1 जुलाई से लागू होना था और दूसरा फेज़ 1 नवम्बर से। इस नियमावली के तहत पायलटों और कर्मचारियों के कामों के दबाव को कम किया जाना था। इसके तहत पायलटों को लगातार सात दिन काम के बाद 48 घण्टों का आराम देना अनिवार्य बना दिया गया। नाइट ड्यूटी के वक़्त एक पायलट द्वारा लैण्डिंग की अधिकतम सीमा छः से घटाकर दो कर दी गयी। लगातार दो नाइट शिफ़्ट को ख़त्म कर दिया गया। उड़ान के एक घण्टे पहले और बाद हर प्रकार के कामों को रोक दिया गया। एक लम्बी उड़ान के बाद एक पायलट के लिए 24 घण्टे के आराम को अनिवार्य बना दिया गया।

ज़ाहिरा तौर पर इस नियमावली से इण्डिगो को समस्या होनी शुरू हो गयी क्योंकि उन्हें इस नियमावली का पालन करने के लिए कर्मचारियों और पायलटों की संख्या बढ़ानी पड़ती जिससे कर्मचारियों की हड्डियों से निचोड़ने वाला उनका मुनाफ़ा कम हो जाता। इसलिए इण्डिगो ने इस आदेश पर कोई ध्यान नहीं दिया। इस नियमावली के लागू होने का दूसरा फ़ेज़ 1 नवम्बर से शुरू होने वाला था। कामों के दबाव में कोई विचारणीय बदलाव न आने पर क्रू सदस्य और पायलटों ने इसपर ऐतराज़ जताना शुरू किया। इसके नतीजे के तौर पर कई उड़ानें रद्द होनी शुरू हो गयी। 3 दिसम्बर तक आते-आते स्थिति और बिगड़ गयी और सैकड़ों की संख्या में उड़ानें रद्द हो गयी हैं।

जब सवाल मोदी सरकार की मिलीभगत और आपराधिक उपेक्षा पर खड़ा होना शुरू हो गया तो मामले को रफ़ा-दफ़ा करने के लिए सरकार इण्डिगो से लगातार वार्ता करने में लग गयी। नागरिक उड्डयन मंत्री राम मोहन नायडू लोगों को तरह-तरह के आश्वासन देने में लग गये। लेकिन सरकार पूरी कोशिश कर रही थी कि इण्डिगो के लिए मुनाफ़े को किसी तरह से बचा लिया जाये। हालिया जानकारी के मुताबिक़ सरकार ने इण्डिगो के प्रति अपनी वफादारी ज़ाहिर करते हुए उनके द्वारा इस नियमावली को लागू करने के लिए 10 फरवरी तक समय को बढ़ा दिया है। साथ ही उपरोक्त नियमावली में उन्हें काफी छूट भी दी गयी है। फेडरेशन ऑफ़ इण्डिया पायलट्स ने यह बयान जारी किया है कि इण्डिगो पिछले लम्बे समय से कर्मचारियों के ऊपर कामों का दबाव बना रहा था और नये कर्मचारियों की नियुक्ति नहीं की जा रही थी। एफ़डीटीएल को लागू करने के लिए कम्पनी को दो साल का वक़्त दिया गया था, लेकिन इसके बावजूद न कोई नयी नियुक्ति हुई और न ही कामों की स्थिति सुधारी गयी।

अधिकतम मुनाफ़ा निचोड़ने के लिए इण्डिगो द्वारा विमानों को रद्द किये जाने की वजह से यात्रियों को न केवल परेशानियों का सामना करना पड़ा, बल्कि कई यात्रियों को 12-12 घण्टे तक इन्तज़ार करना पड़ा। उन्हें खाने से लेकर सैनिटरी पैड जैसी बुनियादी चीज़ें भी नहीं प्रदान की गयीं। यह बात दीगर है देश में करोड़ों की आबादी हर दिन इससे भी बदतर स्थिति में रेल में सफ़र करती है। खाना और सैनिटरी पैड तो दूर, इस देश के आम मेहनतकश 24-48 घण्टों तक रेल में भेड़-बकरियों की तरह ठूँसकर सफ़र करने को मजबूर होते हैं, जहाँ टॉयलेट इस्तेमाल करना भी उन्हें मयस्सर नहीं होता है।

इस घटना के बाद से देश के पूँजीपतियों के प्रति मोदी सरकार की पक्षधरता एक बार फिर ज़ाहिर हो गयी है। मोदी सरकार इण्डिगो के मुनाफ़े को बचाने के लिए जी जान से लगी हुई है। उन्हें न तो पायलट और क्रू के लोगों के ऊपर कामों के बढ़ते दबाव से कोई मतलब है और न ही लोगों की सुरक्षा से। मोदी सरकार उस काम को बख़ूबी निभा रही है, जिसे करने के लिए इन पूँजीपतियों ने उसे करोड़ों का चन्दा दिया था और सत्ता की कुर्सी तक पहुंचाया था। इस पूरे मसले को लेकर जहाँ एक ओर मोदी सरकार की पक्षधरता साफ़ तौर पर नज़र आ रही है वहीं दूसरी ओर कुछ लोग एकाधिकार पूँजीवाद के बरक्स “मुक्त प्रतिस्पर्धा” के दौर के पूँजीवाद की वकालत कर रहे हैं क्योंकि विमानन सेक्टर में इण्डिगो फिलहाल एक इजारेदार की स्थिति में है। लेकिन ऐसे “भोले” लोग यह नहीं समझ पाते है कि न तो पूँजीवाद के मुक्त प्रतिस्पर्धा के दौर में प्रतिस्पर्धा वास्तव में “मुक्त” थी और न ही आज इजारेदारी के दौर में प्रतिस्पर्धा पूरी तरह समाप्त हो गयी है। ये दोनों दौर असल में पूँजीवाद के ही अलग-अलग चरण हैं। हमें यह समझना होगा कि अपने आप में यह समस्या पूँजीवाद-जनित है, और एकाधिकार पूँजीवाद असल में “मुक्त प्रतिस्पर्धा” की ही तार्किक परिणति है। इसलिए इस समस्या को, बिना पूँजीवादी व्यवस्था से जोड़े, न तो समझा जा सकता है और न ही हल किया जा सकता है। मुनाफ़े के लिए मज़दूरों-कर्मचारियों के ऊपर कामों के बढ़ते दबाव और उनकी इस स्थिति का स्थायी समाधान असल में पूँजीवाद के ख़ात्मे के बिना मुमकिन नहीं है।

हालाँकि इण्डिगो आज जो कुछ भी खुलेआम कर रहा है, वह इस व्यवस्था के भीतर पूँजीवादी राज्य द्वारा सुनिश्चित किये जाने वाले कामों के हालात और बुनियादी सुरक्षा के मानकों का भी उल्लंघन है। और ऐसा करने के लिए मोदी सरकार इसे खुली छूट दे रही है। ग़ौरतलब है कि मुनाफ़े की गिरती दर की वजह से आर्थिक संकट के दौर में पूँजीपति वर्ग असल में इसी कारण से फ़ासीवाद की ओर रुख करता है ताकि मज़दूरों और कर्मचारियों के रहे-सहे अधिकारों को भी ख़त्म कर उन्हें लूटने की खुली छूट मिल सके। यह काम मोदी सरकार पूँजीपतियों के लिए बख़ूबी कर रही है। इण्डिगो के पायलट व क्रू के अधिकारों पर किया गया यह हमला असल में देशभर में मज़दूरों और कर्मचारियों के हक़ों और अधिकारों पर किये जाने वाले हमले की ही निरन्तरता में किया जा रहा है। हाल में ही लेबर कोड को लागू करने के बाद मोदी सरकार ने इसे ही क़ानूनी जामा पहनाने का काम किया है। लेकिन इसका जवाब मज़दूरों, कर्मचारियों और आम जनता की एकजुटता के ज़रिये ही दिया जा सकता है। इतिहास ने हमें यह सिखाया है कि बड़ी से बड़ी प्रतिक्रियावादी जनविरोधी ताक़तें जनता की एकजुटता के दम पर घुटनों पर आ जाती हैं और आज अपनी इसी एकजुटता के ज़रिये सरकार और पूँजीपतियों के गठजोड़ के ख़िलाफ़ हमें आगे आने की ज़रूरत है।

देशभर में अनेक बीएलओ की मौत : ये एसआईआर के दबाव में होने वाली हत्याएँ हैं!

(पेज 6 से आगे)

दिया जाये। एसआईआर के जरिये भाजपा सरकार उन सामाजिक वर्गों व समुदायों के मताधिकार को रद्द करने का प्रयास कर रही है जो उसके विरुद्ध जाने की प्रबल सम्भावना रखते हैं। बिहार में हुए एसआईआर का उदाहरण हमारे सामने है। एसआईआर के ज़रिये भाजपा सरकार ने बिहार की जनता के उन हिस्सों के मताधिकार को छीनने की साज़िश की, जो हिस्से मुसलमानों, ग़रीब दलित, स्त्रियों और प्रवासी मज़दूरों के बीच से आते हैं यानी उन जगहों से जहाँ से भाजपा को वोट मिलने की उम्मीद नगण्य है। यानी जनता की सामूहिक इच्छा चाहे कुछ भी हो, वह चुनावों की प्रक्रिया में सटीकता के साथ प्रकट ही न हो पाये और भाजपा सरकार में बरक़रार रहे! इसलिए ही इसको हर जगह लागू करने को लेकर मोदी सरकार इतनी हड़बड़ी में है। ऐसी चुस्ती और मुस्तैदी जनता के ज़रूरी मुद्दों यानी शिक्षा, रोज़गार, स्वास्थ्य, बढ़ते प्रदूषण इत्यादि के सवाल पर हमें तो कभी नहीं दिखायी देती है!

एसआईआर से भाजपा और संघ परिवार के अलावा किसी का भला नहीं होने वाला है। यह वास्तव में समूची जनता के ख़िलाफ़ है। “घुसपैठियों” का नक़ली डर दिखाकर वास्तव में सभी धर्मों व जातियों की आम मेहनतकश जनता को निशाना बनाया जा रहा है। निश्चित तौर पर, इसके ज़रिये सबसे ज़्यादा आम मुस्लिम आबादी के विरुद्ध ज़हरीला माहौल बनाया जा रहा है ताकि बेरोज़गारी और महँगाई से त्रस्त जनता का गुस्सा एक नक़ली दुश्मन पर फूट पड़े और मोदी सरकार को कठघरे से बाहर कर जनता आपस में ही लड़ती रहे। इसलिए, हमें एसआईआर के पीछे मोदी सरकार की असल मंशा को समझना होगा और जहाँ कहीं भी इसे लागू करने की तैयारी हो रही है वहाँ सबसे पहले तो सड़कों पर उतरकर इसका विरोध करना होगा।

इसके साथ ही एसआईआर के फर्ज़ीवाड़े की आड़ में हो रही हत्याओं के ख़िलाफ़ भी आवाज़ उठानी होगी। पिछले कुछ दिनों में एसआईआर के दबाव और मानसिक प्रताड़ना से होने वाली मौतों की संख्या जिस तरह बढ़ी है, वह असहनीय है। लोगों की इन असामयिक मौत की ज़िम्मेदार भाजपा सरकार और उसकी जन-विरोधी नीतियाँ हैं। इसके ख़िलाफ़ अगर हम अब भी चुप रहें तो कल जब हमारी बारी आयेगी तो बोलने के लिये कोई नहीं बचेगा!

बढ़ रहे प्रदूषण के बीच मोदी सरकार की जुमलेबाज़ी और ख़राब होते मज़दूर वर्ग के हालात

● अविनाश

भारत के कई शहर एक घने, ज़हरीले धुएँ की चादर से ढके हुए हैं जिससे आँखों में जलन और गले में खराश हो रही है। यह ज़हर न उम्र देखता है, न जाति-धर्म, न ही शक्ल-सूरत—यह लगातार साँस के ज़रिये हर किसी के फेफड़ों में समा रहा है। हाँ, एक तबका जिसके पास आर्थिक सामर्थ्य है वह इससे बचने की तात्कालिक कोशिशें ज़रूर कर रहा है। हाल के आँकड़े बताते हैं कि दिल्ली-एनसीआर में एयर प्यूरीफ़ायर की बिक्री में 72% की बढ़ोतरी हुई है, वहीं महाराष्ट्र 12% के साथ दूसरे स्थान पर रहा है। यानी बढ़ रहे प्रदूषण से फ़ायदा भी पूँजीपतियों को ही हो रहा है! कुछ ऐसे भी लोग हैं जो फिलहाल शहर छोड़कर पहाड़ियों और समन्दर के किनारे बसने चले गये हैं। ज़ाहिरा तौर पर प्रदूषण के दुष्प्रभावों से बचने की ऐसी कोशिशें देश की बहुसंख्यक मेहनतकश आबादी के लिए सम्भव नहीं।

प्रदूषण के इन बदतर हालात के बीच दिल्ली के बवाना, वज़ीरपुर, ओखला, नारायणा आदि के कारख़ानों या गुरुग्राम-मानेसर के ऑटोमोबाइल और कपड़ा कारख़ानों में जाने वाले लाखों मज़दूरों को कोई राहत नहीं मिली है। मुम्बई में सुबह 4:30 बजे की तेज़ रफ़्तार लोकल ट्रेन पकड़कर शहर को चलाने और चमकाने वाली आबादी बढ़ते प्रदूषण की मार झेलते हुए काम पर निकल रही है। यह साँसों में घुलता ज़हर सभी को धीमी मौत की ओर ले जा रहा है।

मगर सवाल यह बनता है कि क्या एयर प्यूरीफायर प्रदूषण से लड़ने के लिए काफ़ी हैं और इससे भी ज़रूरी सवाल यह कि उनका क्या जो यह ख़रीदने की कूव्वत नहीं रखते? उन्हें प्रदूषण से मरने के लिए ख़ुद को छोड़ देना चाहिए? क्या आज सरकार और इस व्यवस्था के पैरोकारों द्वारा प्रदूषण और पर्यावरण को लेकर पूछे जाने वाले इन्हीं ज़रूरी सवालों को दबा नहीं दिया जा रहा है? क्या हमें यह नहीं पूछना चाहिए कि प्रदूषण के इन हालात के लिए कौन ज़िम्मेदार है और कौन-सा वर्ग सबसे अधिक इसका खामियाज़ा भुगत रहा है?

लेकिन सरकार की मानें तो उसके पास वायु प्रदूषण से होने वाली मौतों पर "कोई पक्का डेटा नहीं" है, जबकि वैश्विक अध्ययन भारत में हर साल इसकी वजह से होने वाली 17 लाख मौतों का आँकड़ा बताते हैं। आइए, सरकार द्वारा पेश किये जा रहे इस कुतर्क और झूठ की जाँच-पड़ताल करते हैं।

सरकारी झूठ : प्रदूषण और इंसानी मौतों के बीच कोई रिश्ता नहीं है!

मोदी सरकार के तमाम दावों के विपरीत कई अध्ययन भारत में वायु प्रदूषण की गम्भीर स्थिति को उजागर करते हैं। चिकित्सा विज्ञान की प्रतिष्ठित पत्रिका 'लैंसेट' की ओर से 2009 से 2019 तक किये गये एक व्यापक अध्ययन में ज़ोर दिया गया है कि बारीक कणों (PM2.5) के लम्बे समय तक सम्पर्क में रहने से मृत्यु का ख़तरा काफ़ी बढ़ जाता है। अध्ययन के अनुसार, "भारत में हर साल PM2.5 के लम्बे समय तक सम्पर्क के कारण 1.5 मिलियन मौतें होती हैं, जो विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के वायु गुणवत्ता दिशानिर्देशों द्वारा अनुशंसित 5 $\mu g/m^3$ सीमा से कहीं अधिक है।" लैंसेट के शोध के मुताबिक, "सालाना PM2.5 सांद्रता में हर 10 $\mu g/m^3$ की वृद्धि, सभी कारणों से होने वाली मृत्यु के 8.6% अधिक जोखिम से जुड़ी थी। भारतीय राष्ट्रीय वायु गुणवत्ता मानकों के आधार पर 2009 और 2019 के बीच लगभग 3.8 मिलियन मौतें PM2.5 के कारण हुईं। जबकि WHO दिशानिर्देशों के पैमाने से देखें तो यह संख्या बढ़कर 16.6 मिलियन हो जाती है, जो देश में कुल मृत्यु दर का लगभग एक चौथाई है।"

एक अन्य अध्ययन में अनुमान लगाया गया कि PM10 सांद्रता में हर 10 $\mu g/m^3$ की बढ़ोतरी पर सभी प्रकार की मौतों में 0.14% की वृद्धि होती है। गैसीय प्रदूषकों में नाइट्रोजन डाइऑक्साइड (NO_2) का सबसे ज़्यादा असर दिखा, जिसमें रोज़ाना की सांद्रता में हर 10 $\mu g/m^3$ की बढ़ोतरी पर मौतों में 1.00% की वृद्धि हुई। NO_2 के प्रभाव को नियंत्रित करने के बाद ओज़ोन (O_3) और कार्मन मोनोऑक्साइड (CO) का असर भी ज़्यादा पाया गया। उम्र के आधार पर किये गये विश्लेषण से पता चला कि पार्टिकुलेट मैटर का सबसे ज़्यादा असर बुज़ुर्गों (65 वर्ष और उससे अधिक) पर होता है, जबकि गैसीय प्रदूषकों का सबसे ज़्यादा असर 5–44 वर्ष की आयु वर्ग पर पड़ता है। शोधकर्ताओं ने निष्कर्ष निकाला कि "यह अध्ययन इस बात के लिए अतिरिक्त सबूत देता है कि आस-पास की वायु गुणवत्ता सभी प्रकार की मौतों से जुड़ी है।"

इसके बावजूद मोदी सरकार संसद में कह रही है कि हम अन्तरराष्ट्रीय मानक नहीं मानते और आँकड़े जुटाने का हमारा अपना तरीक़ा है! यानी आम भाषा में, सरकार आँकड़ों की बाज़ीगरी करके यह दिखाने की कोशिश कर रही है कि "सब चंगा-सी"! सब कुछ नियंत्रण में है!

प्रदूषण फैलने के कारणों पर सरकार को बचाने के लिए गोदी मीडिया द्वारा फैलाया जा रहा झूठ

CPCB (केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड) की वेबसाइट से अक्टूबर 2024 से जनवरी 2025 तक भारत के पाँच बड़े शहरों—दिल्ली, मुंबई, भोपाल, लखनऊ और हैदराबाद—के AQI आँकड़ों की जाँच एक बिल्कुल अलग तस्वीर पेश करती है। टीवी बहसों में गोदी मीडिया एक झूठी कहानी गढ़ रहा है और "तू नंगा, तू नंगा" का खेल खेलकर मोदी सरकार को दोषमुक्त साबित करने में लगा हुआ है। ग़ौरतलब है कि इस बार के संसद सत्र में सरकार ने प्रदूषण के मसले पर कोई बहस होने ही नहीं दी जबकि 'वन्दे मातरम' पर निठल्ली चर्चा में कई घण्टे बर्बाद कर दिये गये। दिलचस्प बात यह जानना होगा कि प्रधानमंत्री मोदी और गृहमंत्री अमित शाह संसद में उछल-उछलकर जिस 'वन्दे मातरम' के इतने

गुणगान गा रहे थे, क्या ख़ुद बिना टेलिप्रोंप्टर की मदद के शुरू से अन्त तक उसे सुना सकते हैं?! गोदी मीडिया से लेकर ईडी-सीबीआई तक को इस बात की तत्काल जाँच शुरू कर देनी चाहिए!

बहरहाल, मीडिया की बहसों में दिल्ली में प्रदूषण फैलने के कारणों को सिर्फ़ पराली जलाने तक सीमित कर दिया गया है, जो प्रदूषण के लिए ज़िम्मेदार तमाम कारणों में से एक कारण है। सरकार का भोंपू मीडिया या तो प्रदूषण पर बात ही नहीं करता, या फिर सरकार को क्लीन चिट देने का काम करता है। जबकि CSE के एक विश्लेषण के अनुसार, 50.1% प्रदूषण परिवहन से होता है, जबकि पराली जलाने का योगदान महज़ 8.9% है। नतीजतन, मुंबई, भोपाल और लखनऊ जैसे शहर—जहाँ खेतों में आग लगने की घटनाएँ नगण्य हैं—प्रदूषण की बहस से बाहर रखे जाते हैं, जबकि वे भी गम्भीर वायु प्रदूषण से जूझ रहे हैं।

इसके अलावा निजी मालिकाने के तहत चल रहीं तमाम फ़ैक्टरियाँ और कारखाने भी वायु व जल प्रदूषण फैलाने का काम करते हैं क्योंकि अपना मुनाफ़ा बढ़ाने की हवस के चलते कारख़ाना मालिक अपशिष्ट निपटान के उपायों के ख़र्च में कटौती करते हैं। यह सब दर्शाता है कि प्रदूषण पर मीडिया की कहानी किसी गल्प कथा से कम नहीं है, जो न सिर्फ़ असन्तुलित और झूठी है, बल्कि डेटा-आधारित विश्लेषणों से भी कोसों दूर है।

प्रदूषण को नहीं, डेटा को नियंत्रित करती फ़ासिस्ट सरकार!

मोदी सरकार प्रदूषण पर नियंत्रण पाने के बजाय डेटा को नियंत्रित करने का काम कर रही है। सवाल यह है कि सरकार द्वारा फैलाये जा रहे झूठ और आँकड़े छिपाने के पीछे कारण क्या है? क्या फ़ासीवादी मोदी सरकार और बढ़ते प्रदूषण के बीच कोई रिश्ता है?

सरकारी भोंपू मीडिया, व्हाट्सऐप यूनिवर्सिटी और तमाम पैनलों में बिठाये गये भाड़े के "विशेषज्ञ" यह कुतर्क देते हैं कि प्रदूषण फैलाने में सबकी ज़िम्मेदारी है, सिर्फ़ सरकार को दोष देना ठीक नहीं; या फिर मोदी सरकार की काहिली को छिपाने के लिए पिछली सरकारों के मत्थे इस समस्या को भी मढ़ते हैं। दिल्ली की मुख्यमंत्री रेखा गुप्ता ने हाल के दिनों में "अक़्लमन्दी" के कुछ ऐसे नये रिकॉर्ड क़ायम किये हैं कि प्रधानमंत्री मोदी तक इस रेस में फिलहाल दूसरे स्थान पर जा पहुँचे हैं! पर्यावरण को लेकर रेखा गुप्ता की "अमृत वाणी" के चंदेक नमूने कुछ इस प्रकार हैं – AQI को तापमान बता देना, यह कहना कि कूड़े के पहाड़ से बस कह देने भर से कि "तुम्हें जाना पड़ेगा" और वे ग़ायब हो जायेंगे आदि! भाजपा सरकार द्वारा यमुना सफ़ाई को लेकर फैलाया गया झूठ भी सबके सामने है। दरअसल मोदी सरकार हर मोर्चे की तरह प्रदूषण की समस्या से निपटने के मोर्चे पर भी फिसड्डी साबित हुई है। ऐसे में अपना आभामंडल बनाये रखने के लिए और फ़ासीवादी राजनीति में छवि निर्माण की बाध्यताओं के चलते मोदी सरकार को प्रदूषण के मसले पर भी जुमलेबाज़ी का इस्तेमाल करना पड़ रहा है जिसमें वैसे भी यह सरकार काफ़ी माहिर है। छवि पर दाग़ न लगे, इसके लिए ही आँकड़े छिपाये जाते हैं—चाहे वे AQI के हों, बेरोज़गारी के हों या फिर GDP के!

मोदी सरकार के शासनकाल में पूँजीपतियों को उनके मुनाफ़े की ख़ातिर जल, जंगल और ज़मीन बिना पर्यावरणीय मानकों की परवाह किये औने-पौने दामों पर सौंप दिया जा रहा है। इसका ताज़ा उदाहरण फ़ॉरेस्ट (कंज़र्वेशन) एक्ट, 1980 में किये गये संशोधन हैं, जिनसे पर्यावरणीय निगरानी कमज़ोर हुई है और अरावली व पश्चिमी घाट जैसे इकोलॉजिकली सेंसिटिव इलाक़ों में जंगल कटाई और खनन को बढ़ावा मिला है। एनवायरनमेंटल परफॉर्मेंस इंडेक्स (EPI) में भारत की लगातार गिरती रैंकिंग चीख-चीख कर इस बात की गवाही दे रही है कि मोदी सरकार द्वारा नंगे तौर पर लागू की जा रही पूँजीपरस्त नीतियाँ हमारे देश को पर्यावरणीय विनाश की ओर लेकर जा रही हैं। येल और कोलंबिया यूनिवर्सिटीज़ के हालिया आकलन में भारत 180 देशों में 180वाँ स्थान पर है। यह भी मौजूदा सरकार के कार्यकाल में पर्यावरणीय स्वास्थ्य और इकोसिस्टम सुरक्षा में आयी भारी गिरावट का ही प्रमाण है।

स्पष्ट है कि बेरोज़गारी, महँगाई, साम्प्रदायिक नफ़रत व हिंसा से लेकर पर्यावरणीय तबाही और प्रदूषण तक के मामले में निस्संदेह भारत "विश्वगुरु" बन चुका है! मोदी सरकार द्वारा अदानी और रिलायंस जैसे बड़े कॉरपोरेट समूहों को सस्ती ज़मीन मुहैया करवाकर और पर्यावरणीय नियमों में ढील के ज़रिये भारी फ़ायदा पहुंचाया गया है, जिसकी क़ीमत विस्थापित समुदायों, पर्यावरण और कुदरत ने चुकायी है।

इन्हीं पर्यावरणीय बदलावों का सीधा रिश्ता उत्तराखण्ड में धराली की घटना, केरल में भूस्खलन, असम और आंध्र–तेलंगाना में आयी बाढ़ जैसी तबाहियों से जुड़ता है। आज यह समझना ज़रूरी है कि इन विभीषिकाओं के लिए मुनाफ़ा-केन्द्रित पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली ज़िम्मेदार है। पूँजीवादी शासक वर्ग ने मुनाफ़े की अन्तहीन हवस में पृथ्वी पर जीवन के अस्तित्व को ही ख़तरे में डाल दिया है। हमारे देश में सत्ता में बैठी हुई और पूँजीपतियों की सेवा में तत्परता के साथ लगी हुई फ़ासीवादी मोदी सरकार पूँजीवाद-जनित पर्यावरणीय विनाश को अभूतपूर्व गति से बढ़ा रही है। फिर चाहे जंगलों में आग हो, बाढ़ और सूखा हो, भूस्खलन हो या सुनामी—ये सभी घटनाएँ हमें चीख-चीखकर चेतावनी दे रही हैं कि पर्यावरण जैसे मुद्दे पर भी मज़दूर–मेहनतकशों को कमान सम्भालनी होगी, पूँजीवादी व्यवस्था और फ़ासीवादी सरकार की नीतियों के ख़िलाफ़ संगठित संघर्ष चलाना होगा।

इतिहास का सबक़

इटली में फ़ासीवाद द्वारा मज़दूर वर्ग के अधिकारों पर हमला और मोदी सरकार के 'चार लेबर कोड'

● सनी

मोदी सरकार ने चार श्रम संहिताओं के ज़रिये भारत के मज़दूर वर्ग पर आज़ादी के बाद का सबसे बड़ा हमला किया है। देश के पूँजीपतियों ने 2014 के चुनाव में मोदी-संघ-भाजपा पर दाँव इसलिए ही लगाया था ताकि भारतीय 'फ़्यूहरर' द्वारा आर्थिक संकट का बोझ आम मेहनतकश जनता और मज़दूरों पर डाला जा सके। अदानी, अम्बानी, हिन्दुजा, थापर, गोएनका, नारायण मूर्ति आदि पूँजीपतियों ने 'गुजरात मॉडल' और उसके रचियता मोदी के क़सीदे इसलिए ही पढ़े थे ताकि फ़ासीवादी हुकूमत उनके मुनाफ़े पर आने वाली आँच को रोक सके। फ़ासीवाद के जिस मॉडल को भारतीय मीडिया ने 'गुजरात मॉडल' के चमत्कार के तौर पर पेश किया था वह और कुछ नहीं मुसोलिनी का फ़ासिस्ट-कॉर्पोरेटिस्ट मॉडल ही था जिसमें राज्यसत्ता और कॉर्पोरेट हित एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप से नाभिनालबद्ध हो जाते हैं, राज्य द्वारा मज़दूर वर्ग और पूँजीपति वर्ग के बीच वर्ग संघर्ष की जगह वर्ग सहयोग का विचार स्थापित किया जाता है और कॉर्पोरेट घरानों यानी पूँजी को श्रम और प्रकृति के दोहन की खुली छूट दी जाती है।

गुजरात में नरेंद्र मोदी ने श्रम क़ानूनों को अपने मुख्यमंत्री कार्यकाल में कमज़ोर कर दिया था। यही 'मास्टर स्ट्रोक' भारत के पूँजीपति वर्ग के मन को भा गया था और उन्होंने 2014 में मोदी से देश स्तर पर यह करने की उम्मीद पाली और मोदी सरकार ने सत्तासीन होते ही अपने आकाओं की इच्छाओं के अनुसार ही श्रम क़ानूनों को ख़त्म करने या फिर निष्प्रभावी बनाने की शुरुआत कर दी थी। 2020 में ही कोरोना महामारी के दौरान जब देश ऑक्सीजन और स्वास्थ्य सेवाओं की कमी के कारण जूझ रहा था तब मोदी सरकार ने इन क़ानूनों को संसद में पारित करवाया। इस साल 21 नवम्बर को मोदी सरकार ने कहा कि ये क़ानून अब 29 श्रम क़ानूनों की जगह लेंगे लेकिन इसके अमल को फ़िलहाल अगले साल के अप्रैल माह तक के लिए टाल दिया गया है। मोदी सरकार द्वारा चार लेबर कोड लाने का मक़सद भारत के पूँजीपति वर्ग द्वारा मनमाने तरीक़े से मज़दूरों का शोषण करने की आज़ादी को पूँजीपतियों-मालिकों का क़ानूनी अधिकार बनाना है। यह भारत के मज़दूरों के बचे-खुचे श्रम अधिकारों को भी ख़त्म कर देने का क़दम है। ये चारों लेबर कोड मालिकों और कॉरपोरेट घरानों, यानी समूचे पूँजीपति वर्ग को मज़दूरों का भयंकर शोषण करने की खुली छूट देते हैं। यह हमला मज़दूर वर्ग पर फ़ासीवादी हमला है।

इतिहास में मुड़कर देखें तो हम पाते हैं कि हर फ़ासिस्ट हुकूमत ने मज़दूर वर्ग पर हमला किया है। इटली और जर्मनी में फ़ासीवाद और नात्सीवाद ने 20वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में जब सत्ता हासिल की, तो उनके द्वारा संसद को भंग कर दिया और मज़दूरों के हक़ अधिकारों पर बुलडोज़र चढ़ा दिया गया। इटली में फ़ासीवादी मुसोलिनी ने मज़दूरों के हक़-अधिकारों को किस तरह कुचला इससे सबक़ लेकर हम अपनी लड़ाई को समझ सकते हैं। हालाँकि हमें अपने देश-काल की परिस्थितियों के हिसाब से नयी रणनीतियाँ भी बनानी होगी क्योंकि इक्कीसवीं सदी के फ़ासीवादी उभार की हूबहू तुलना या सादृश्य निरूपण बीसवीं सदी के फ़ासीवादी उभार से करने के अपने राजनीतिक जोखिम हैं। आज फ़ासीवादी शक्तियों को परास्त करना इस देश के मज़दूर वर्ग के सामने उपस्थित प्रधान कार्यभार है। इसलिए हमें यह भी समझना होगा कि आज फ़ासीवादी शक्तियों का उभार बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में उनके उभार के समान कोई आकस्मिक घटना नहीं है। चूँकि साम्राज्यवाद के नव उदारवादी दौर में मन्दी और आर्थिक संकट एक दीर्घकालिक परिघटना बन चुकी हैं इसलिए ही इस दौर में फ़ासीवादी शक्तियाँ पूँजीपति वर्ग की भी एक हद तक स्थायी ज़रूरत बन चुके हैं। यही कारण है कि आज फ़ासीवाद एक सतत जारी परियोजना के तौर पर विद्यमान रहेगा। फ़ासीवाद सत्तासीन हो या न हो वह इस दीर्घकालिक मन्दी के दौर में पूँजीपति वर्ग के हितों की सेवा करता है और मज़दूर वर्ग के हर प्रतिरोध का दमन करता है। इसलिए आज फ़ासीवादी आन्दोलन और राजनीति को बेहतर समझने के लिए हमें इतिहास में 20वीं सदी के फ़ासीवादी आन्दोलन और राजनीति का भी अध्ययन करना होगा।

इटली में फ़ासीवादी आन्दोलन की शुरुआत 1919 में हुई थी। फ़ासीवादी उभार क्रान्तिकारी मज़दूर आन्दोलन की हार के बाद पैदा हुआ। पहले विश्वयुद्ध में युद्ध में क्षति उठाने के बावजूद भी इटली के पूँजीपति वर्ग को अपेक्षित "पुरस्कार" नहीं मिला था। देश के निम्न मध्य वर्ग और सैनिकों में प्रतिक्रिया का माहौल था। आर्थिक संकट के चलते यह प्रतिक्रिया फ़ासीवादी प्रतिक्रिया में तब्दील हो सकती थी। आर्थिक संकट के कारण मुनाफ़े के कम होने पर पूँजीपति वर्ग ने मुसोलिनी की फ़ासिस्ट पार्टी को अपना समर्थन दे दिया। मुसोलिनी पहले इतालवी समाजवादी पार्टी में शामिल था। 1903 से 1914 तक वह समाजवादी पार्टी का एक महत्वपूर्ण नेता था। उसने ख़ुद फ़ासिस्ट पार्टी के संगठन के तौर-तरीक़े यहीं सीखे। मुसोलिनी ने समाजवादी पार्टी छोड़ दी और वह बाद में जॉर्ज सोरेल नामक एक संघाधिपत्यवादी चिन्तक और फ्रेडरिख नीत्शे नामक प्रतिक्रियावादी जर्मन दार्शनिक के प्रभाव में आया। इन "विचारों का मेल करके ही इटली में जेण्टाइल नामक फ़ासीवादी चिन्तक की सहायता से मुसोलिनी ने पूरे फ़ासीवादी सिद्धान्त की रचना की। यह सिद्धान्त मज़दूर-विरोधी, पूँजी के पक्ष में खुली तानाशाही, अधिनायकवाद, जनवाद-विरोध, कम्युनिज़्म-विरोध और साम्राज्यवादी विस्तार की खुले तौर पर वकालत करता था।" (अभिनव, 2010, फ़ासीवाद क्या है और इससे कैसे लड़ें?)

फ़ासीवादी पार्टी ने 1919 से ही स्वतंत्र और कम्युनिस्टों से सम्बद्ध यूनियनों और उनके प्रतिनिधियों पर खुलेआम हमले करने शुरू कर दिये। डेनियल गेरों ने इटली में फ़ासीवाद पर चर्चा करते हुए बताया कि सबसे पहले फ़ासीवाद ने इटली में खेतिहर मज़दूर यूनियनों पर हमला किया। खेतिहर मज़दूरों की 'रेड लीग' यूनियन के दफ़्तरों और खेतिहर मज़दूरों के को-ऑपरेटिव के दफ़्तरों को तहस-नहस किया गया। इस काम में फ़ासीवादियों को बड़े भूस्वामियों का समर्थन मिला। मुसोलिनी ने ख़ुद बताया कि फ़ासिस्ट यूनियन क्रान्तिकारी ट्रेड यूनियनों पर हमला करके स्थापित हुई थी। बकौल मुसोलिनी: "यूनियनें कैसे पैदा हुई थीं? जन्म तिथि: 1921, स्थान: पो वैली, परिस्थितियाँ: क्रान्तिकारी दुर्गों की तबाही और फतहा।" (मुसोलिनी द्वारा 1926 में सीनेट को दिये भाषण से और डेनियल गेरों द्वारा अपनी पुस्तक 'फ़ासिज़्म एण्ड बिग बिज़नेस' में उद्धृत)

मालिकों और फ़ासिस्टों ने मज़दूरों को फ़ासिस्ट यूनियन की सदस्यता लेने पर भी मजबूर किया। भूस्वामियों ने फ़ासिस्ट यूनियन से जुड़े मज़दूरों को काम देकर फ़ासिस्ट यूनियन को बढ़ावा दिया। इस दौरान फ़ासिस्टों ने कुछ यूनियन नेताओं को भी मरवाया। फ़ासिस्ट संगठनों ने भूस्वामियों के साथ मिलकर प्रवासी मज़दूरों को कम मज़दूरी पर काम पर रखवाया और स्वतंत्र और क्रान्तिकारी यूनियनों के भूस्वामियों के साथ कॉण्ट्रैक्ट ख़त्म कर दिये गये। हालाँकि, औद्योगिक मज़दूरों के बीच फ़ासिस्ट सत्ता हासिल करने के बाद ही अपनी पकड़ बना पाये। 1922 'रोम पर चढ़ाई' कर फ़ासिस्टों ने इटली में अपनी सरकार बना ली थी। इसके बाद फ़ासिस्टों ने पुलिस और मालिकान के संरक्षण में जमकर 'रेड यूनियनों' पर हमले किये। 1923 में फ़ासिस्ट सरकार 'फ़ासिस्ट ग्रैण्ड काउंसिल' ने मालिकों की एसोसिएशन (जनरल फेडेरेशन ऑफ़ इण्डस्ट्री) को फ़ासिस्ट यूनियनों से सम्बन्ध बनाने का प्रस्ताव रखा। इसके आधार पर ही "कीगी पैलेस" समझौता सम्पन्न हुआ जिसमें मालिकों ने फ़ासिस्ट यूनियनों को आधिकारिक स्वीकृति दे दी। 1924 में सरकार ने स्थानीय प्रशासन को यह ताक़त भी दे दी कि वे किसी भी यूनियन के नेता को यूनियन से निकाल सकते थे। साथ ही प्रशासनिक अधिकारियों को यह शक्ति भी मिली कि वे भंग की गयी यूनियनों के दफ़्तर और सम्पत्ति को ज़ब्त कर सकते थे।

इसके बाद भी फ़ासिस्ट ताक़तें यूनियनों और उनकी शक्ति को पूरी तरह नष्ट नहीं कर पायी थीं। 1925 में फ़ासिस्टों ने मज़दूरों पर हमले को नये चरण में पहुँचाया और मज़दूर वर्ग की संगठित शक्ति को पूरी तरह कुचलने का काम किया। 1925 में "विडोनी पैलेस" समझौते में पूँजीपतियों ने फ़ासिस्ट यूनियनों के साथ समझौता कर उन्हें यूनियन प्रतिनिधित्व का एकाधिकार प्रदान किया। फ़ैक्ट्री समितियों को भंग कर दिया गया। हड़ताल करने का हक़ ख़त्म कर दिया गया और स्वतन्त्र यूनियनों की सम्पत्ति ज़ब्त कर ली गयी। 1926 तक आते-आते फ़ासिस्ट यूनियनों के अलावा सभी यूनियनों को प्रतिबन्धित कर दिया गया और श्रम संघों को भंग कर दिया गया। फ़ासिस्ट यूनियनों को सरकारी संस्था बना दिया गया और इन्हें केवल नाम के स्तर पर सक्रिय रखा गया।

मुसोलिनी ने 11 मार्च, 1926 में अपने भाषण में कहा था: "फ़ासिस्ट यूनियनवाद एक रोबदार शक्ति है, एक शक्तिशाली जन आन्दोलन जो पूरी तरह फ़ासीवाद और सरकार द्वारा नियंत्रित है और एक ऐसा जन आन्दोलन है जो आज्ञा का पालन करता है।" (डेनियल गेरों द्वारा अपनी पुस्तक 'फ़ासिज़्म एण्ड बिग बिज़नेस' में उद्धृत)

इस दौरान राज्य ही मज़दूरों और पूँजीपतियों के बीच एकमात्र मध्यस्थ की भूमिका निभा रहा था और खुले तौर पर पूँजीपतियों के पक्ष में नीतियाँ बनायी गयी। लेबर कोर्ट से लेकर मध्यस्थता की संस्थाएँ मालिकों के पक्ष में काम करती थीं। मुसोलिनी ने स्वयं पूँजीपतियों की फ़ेडेरेशन के अध्यक्ष से इस तथ्य को स्वीकारते हुए कहा: "मिस्टर बेन्नी जब तक मैं सत्ता में हूँ, मालिकों को श्रम न्यायालयों से घबराने की ज़रूरत नहीं है।" (डेनियल गेरों द्वारा अपनी पुस्तक 'फ़ासिज़्म एण्ड बिग बिज़नेस' में उद्धृत)

1927 में 'लेबर चार्टर' लागू किया जिसमें मज़दूरों के अधिकारों को पूरी तरह बुलडोज़र चलाकर कुचल दिया गया। पूँजीपतियों की फ़ेडेरेशन ने इस क़दम का ज़ोर-शोर से स्वागत किया। इस दौर में दूसरी तरफ़ बड़ी पूँजी के ऊपर से कर ख़त्म किये जा रहे थे और पब्लिक सेक्टर कम्पनी और सरकारी सम्पत्ति को कौड़ी के भाव में पूँजीपतियों को दिया जा रहा था। 'लेबर चार्टर' के तहत हर कम्पनी और सेक्टर में फ़ासिस्ट यूनियन को मिलाकर कॉर्पोरेशन्स बनायी गयी। इन कॉर्पोरेशनों में "मालिक और मज़दूरों को मिलकर" राष्ट्र के लिए उत्पादन करना था। इसके तहत मज़दूरों को सैन्य अनुशासन में काम करना पड़ता था। मालिक को यह हक़ मिल गया कि वह अपनी फ़ैक्ट्री में ख़ुद वेतन तय कर सकता था और जो वह तय करेगा वह मज़दूरों के लिए क़ानूनी रूप से बाध्यताकारी था। केवल फ़ासिस्ट पार्टी से जुड़ी एक छोटी सी मज़दूर आबादी को वेतन और अन्य सुविधाओं का फ़ायदा मिला और बाक़ी मज़दूर आबादी रोम के आधुनिक ग़ुलामों की तरह फ़ासिस्ट इटली में खटती रही। यूनियन के प्रतिनिधि भी फ़ासिस्ट पार्टी द्वारा चुने जाते थे। साथ ही, फ़ासीवाद ने मज़दूरों को फ़ासीवादी यूनियनों और कॉर्पोरेशन में नियंत्रित रखने और उन्हें किसी भी क़िस्म से क्रान्तिकारी राजनीति से जुड़ने से रोकने की पुरज़ोर कोशिश की।

फ़ासीवाद ने मुसोलिनी के नेतृत्व में मज़दूरों की यूनियनों को तबाह किया, फ़ैक्ट्री में मज़दूरों के प्रतिनिधित्व को ख़त्म कर दिया, यूनियन के कॉण्ट्रैक्ट को ख़त्म कर दिया, हड़ताल के हक़-अधिकारों को ख़त्म कर दिया और वेतन तय करने का प्राधिकार मालिकों के हाथ में चला गया। यह तब तक चलता रहा जब तक कि इटली की जनता ने मुसोलिनी की हुकूमत को उखाड़ नहीं फेंका और उसे मारकर उसकी लाश को चौराहे पर लटका दिया।

भारत में चार श्रम संहिताओं के ज़रिये मोदी सरकार ने हड़ताल के अधिकार पर हमला किया है तथा यूनियन बनाने के हक़ को कमज़ोर कर दिया है। इटली में फ़ासिस्ट यूनियन की तर्ज़ पर ही भारत में 'भारतीय मज़दूर संघ' को फ़ासीवादियों द्वारा खड़ा किया है जो पूरी तरह से एक सरकारी यूनियन ही है। इटली के उदाहरण से भारत में समानता साफ़ देखी जा सकती हैं लेकिन भारत के फ़ासिस्टों को यह याद है कि मुसोलिनी का अन्त में क्या हश्र हुआ था! इतिहास से सबक़ लेते हुए इसलिए उन्होंने इटली की तरह संसद, जनवादी संस्थाओं का और श्रम क़ानूनों का समूल नाश नहीं किया है। लेकिन आज के दौर में फ़ासीवादियों द्वारा पूँजीवादी राज्यसत्ता की जनवादी अन्तर्वस्तु को लगातार नष्ट करते हुए भी इसके खोल को बरक़रार रखने के वस्तुगत कारण भी हैं। आज के नवउदारवादी पूँजीवाद के दौर में पूँजीवादी राज्यसत्ता में उतनी भी जनवादी सम्भावनाएँ बची नहीं जितनी कि बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में थीं और उन्हें ध्वस्त करना भी इसलिए फ़ासीवादी शक्तियों के लिए आवश्यक नहीं रह गया है।

भारत में श्रम क़ानूनों ख़त्म कर चार लेबर कोड लागू करना मज़दूर वर्ग पर फ़ासीवादी हमला ही है जिसे मोदी सरकार हिटलर और मुसोलिनी की ही तरह लागू कर रही है, हालाँकि हूबहू उस तरह नहीं जैसे मुसोलिनी ने किया। इन फ़ासिस्टों को चार लेबर कोड वापस लेने के लिए मजबूर करने के लिए हमें सड़कों पर उतारने के लिए तैयार होना होगा। अब समय है कि संगठित-असंगठित क्षेत्र के मज़दूर साथ आकर अनिश्चितकालीन हड़ताल कर फ़ासिस्ट सरकार को इन लेबर कोड को वापस लेने पर मजबूर करे। साथ ही, हम मज़दूरों को इतिहास की लड़ाइयों से सबक़ लेकर फ़ासिस्टों को निर्णायक तौर पर हराने के लिए भी तैयारी करनी होगी। बीसवीं शताब्दी में फ़ासिस्टों को नेस्तनाबूत करने का काम मज़दूर वर्ग के लौह-मुष्ठ ने ही किया था और 21वीं सदी में भी यह मज़दूर वर्ग ही है जो फ़ासीवादी साँप के फन को कुचलेगा।

‘चार लेबर कोड’ मज़दूरों-कर्मचारियों के अधिकारों पर सबसे बड़ा हमला है!

(पेज 1 से आगे)

क़दमों को “सुधार” के तौर पर पेश कर रही है। ‘श्रमेव जयते’ की लफ़्फ़ाज़ी के साथ और ख़ुद को “मज़दूर हितैषी” घोषित करते हुए मोदी सरकार अपने ही गाल थपथपाने में लगी है। पुराने श्रम क़ानूनों को ‘तर्कसंगत’ बनाने और उनके ‘सरलीकरण’ के नाम पर ये “ऐतिहासिक सुधार” दरअसल समूचे मज़दूर वर्ग के अधिकारों पर एक ऐतिहासिक प्रहार है। हर बीतते दिन के साथ देश के मज़दूर-कर्मचारी दशकों के संघर्षों के बाद अर्जित किये गये हकों पर हो रहे इस फ़ासीवादी हमले की वास्तविकता समझ रहे हैं और यही कारण है कि सरकार और गोदी मीडिया समेत सम्पूर्ण फ़ासीवादी प्रचार तंत्र इन लेबर कोडों का झूठा प्रचार करने में एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा रहे हैं।

ग़ौरतलब है कि मोदी सरकार साल 2019 और 2020 में ही कोरोना महामारी और लॉकडाउन के दौरान इन क़ानूनों को संसद में पारित करवा चुकी थी और उसके बाद इन्हें आनन-फ़ानन में लागू करने की फ़िराक़ में भी थी। लेकिन 2024 लोकसभा चुनावों में ‘400 पार’ के गुब्बारे की हवा निकलने के बाद और नितीश कुमार और चन्द्रबाबू नायडू की बैसाखियों के सहारे सत्ता में तीसरी बार वापसी के बाद मोदी सरकार कुछ वक़्त तक फूँक-फूँककर क़दम रख रही थी और लेबर कोड के लागू होने में देरी के पीछे राज्य सरकारों द्वारा नियम बनाये जाने में देरी का हवाला दे रही थी। हालाँकि स्पेशल इंटेन्सिव रिवीज़न (एसआईआर), वोटचोरी और ईवीएम घोटाले के बूते और चुनाव आयोग की खुली मदद और मिलीभगत के ज़रिये बिहार में पिछले महीने चुनाव जीतने और सरकार बनाने के बाद फ़ासीवादी भाजपा के हौसले काफ़ी बुलंद हो चुके थे और इसलिए सरकार ने 21 नवम्बर को अधिसूचना जारी करके इन 4 लेबर कोडों को लागू करने का ऐलान किया।

29 केन्द्रीय श्रम क़ानूनों को ख़त्म कर जिन चार लेबर कोडों को लाया गया है वे हैं : **‘मज़दूरी पर संहिता, 2019 (The Code on Wages, 2019), 'व्यावसायिक सुरक्षा, स्वास्थ्य और कार्यस्थितियों पर संहिता, 2020’ (The Occupational Safety, Health and Working Conditions Code, 2020), 'सामाजिक सुरक्षा पर संहिता, 2020’ (The Code on Social Security, 2020) व 'औद्योगिक सम्बन्धों पर संहिता, 2020’ (The Industrial Relations Code, 2020)।**

ये चार कोड पूँजीपतियों-कम्पनियों को मज़दूरों-कर्मचारियों को लूटने की पूरी खुली छूट देते हैं और पूँजीवाद के अन्तर्गत मज़दूर वर्ग की असुरक्षित और अरक्षित स्थिति को और बढ़ावा देते हैं और उन्हें पूरी तरह मालिकों के रहमोकरम पर छोड़ते हैं। साथ ही मज़दूर अपने अधिकारों की रक्षा के लिए संगठित भी न हो पायें, इसका पक्का इन्तज़ाम भी चार लेबर कोड में किया गया है। ये लेबर कोड कार्यपालिका को असीमित अधिकार देकर मज़दूर वर्ग के हर प्रकार के सम्भावित दखल को ख़त्म करने के पूरे प्रावधान देते हैं। यह आम तौर पर निरंकुश राज्यसत्ताओं और विशेष तौर पर इक्कीसवीं सदी के फ़ासीवाद की ख़ासियत है कि राज्यसत्ता के क्रियाकलापों में विधायिका के मुक़ाबले निर्णयकारी शक्तियाँ कार्यपालिका को हस्तान्तरित होती जाती हैं जिस वजह से जनसमुदायों के व्यापक हिस्सों का कोई भी नियंत्रण या दखल किसी भी लिये गये फ़ैसले पर नहीं रहता है। इन लेबर कोड द्वारा यही किया जा रहा है।

कुलमिलकर कहें तो चार लेबर कोड मज़दूरों-कर्मचारियों के अधिकारों पर आजतक किया गया सबसे बड़ा हमला है। आज़ादी के दौर में ब्रिटिश हुकूमत ने ‘ट्रेड डिस्प्यूट बिल’ लाकर मज़दूरों के अधिकारों को छीना था, जिसके विरुद्ध शहीदे आज़म भगतसिंह और उनके क्रान्तिकारी साथियों ने विरोध भी संगठित किया था। यही काम आज चार लेबर कोड के ज़रिये मोदी सरकार कर रही है। यह दिखाता है कि भाजपा-संघ ने अपने पुराने आकाओं यानी अंग्रेज़ों से काफ़ी कुछ सीखा है!

ऐसे में आज देश के औपचारिक-अनौपचारिक क्षेत्र में कार्यरत संगठित व असंगठित मज़दूरों-कर्मचारियों के पास इन नये क़ानूनों के खिलाफ़ फ़ैसलाकुन संघर्ष छेड़ने के अलावा और कोई रास्ता नहीं है। हमें यह समझना होगा कि अब एक दिवसीय हड़तालों की रसमदायगी का वक़्त नहीं रहा! इन एकदिनी-दोदिनी कवायदों से कुछ होना होता तो पहले ही हो चुका होता! आज स्थिति यह है कि ये लेबर कोड अब क़ानून का रूप ले चुके हैं और हमारे सिर पर ख़तरे की तलवार बनकर लटक रहे हैं। लेकिन अफसोस की बात है कि केन्द्रीय ट्रेड यूनियन फ़ेडरेशनें एक दिन की हड़तालों की रुटीनी क़वायद से आगे बढ़ने को तैयार ही नहीं हैं! हाल ही में दिल्ली में सम्पन्न हुई इन फ़ेडरेशनों की बैठक में 12 फरवरी 2026 को एकदिवसीय आम हड़ताल का ऐलान किया गया। यह एकदिवसीय रस्में तो पिछले 30 वर्षों से बदस्तूर निभायी जा रही हैं! इनसे अगर कोई गुणात्मक परिवर्तन होना होता तो अब तक हो चुका होता! अब जबकि ज़रूरत इन एकदिवसीय हड़तालों के सालाना प्रतीकात्मक जलसों से आगे बढ़कर कुछ वास्तविक क़दम उठाने की है, तब भी ये केन्द्रीय ट्रेड यूनियन फ़ेडरेशनें मज़दूरों-कर्मचारियों की आबादी को इन्हीं रस्मों के गोल चक्कर में उलझाये रखने का काम कर रही हैं। अब जब वक़्त व्यापक मज़दूर-कर्मचारी आबादी को अनिश्चितकालीन आम हड़ताल के लिए एकजुट करने का है तब इस प्रकार की घोषणा मज़दूर वर्ग के मनोबल को ही तोड़ने का काम करेगी। आज अगर मोदी सरकार को चार लेबर कोड वापस लेने के लिए मजबूर करना है, तो सभी केन्द्रीय ट्रेड यूनियन संघों को पहलक़दमी लेकर अनिश्चितकालीन आम हड़ताल का आह्वान करना चाहिए और इन लेबर कोडों के वापस लेने तक अनिश्चितकालीन आम हड़ताल को जारी रखना चाहिए। इसी साहसिक क़दम के ज़रिये आज मज़दूर आन्दोलन के भीतर की शिथिलता और गतिरोध भी टूटेगा।

हम संघर्ष के रास्ते पर विस्तार से आगे चर्चा करेंगे। लेकिन फ़िलहाल के लिए यह जान लेना भी आवश्यक है कि किस वैश्विक और राष्ट्रीय परिदृश्य में मोदी सरकार द्वारा ऐसे घोर मज़दूर-विरोधी क़दम उठाये जा रहे हैं।

गहराता आर्थिक संकट, फ़ासीवाद का उभार और मज़दूर वर्ग पर बढ़ते हमले

मोदी सरकार द्वारा श्रम क़ानूनों को लचीला और निष्प्रभावी बनाने के इन क़दमों को वैश्विक परिदृश्य में भी रखकर देखने की ज़रूरत है। 1970 के दशक से पूँजीवाद ने तेज़ी का कोई विचारणीय दौर नहीं देखा है। पूँजीवादी व्यवस्था लम्बे समय से दीर्घकालिक मन्दी का शिकार है जो बीच-बीच में गहरे संकटों का भी रूप लेती रहती है। दुनियाभर के पूँजीपति सिकुड़ते मुनाफ़े और ठहरावग्रस्त व्यवस्था में जान फूँकने के लिए फिर से दुनिया को युद्ध की ओर धकेल रहे हैं और अपने देश के अन्दर मज़दूरों के लिए कारख़ानों को यातना शिविर बना रहे हैं। आर्थिक संकट, मन्दी और अर्थव्यवस्था में ठहराव के कारण बेरोज़गारी भी तेजी से बढ़ रही है और मज़दूरों का जीवन तबाह-बर्बाद हो रहा है। मुनाफ़े की औसत दर के गिरते रहने से पैदा होने वाले पूँजीवादी आर्थिक संकट से निजात पाने के लिए ही दुनिया भर के पूँजीपति मज़दूर वर्ग के बचे-खुचे अधिकारों को भी ख़त्म कर देने के लिए तमाम सरकारों पर लगातार दबाव बना रहे हैं और इसलिए “मज़बूत नेतृत्व” वाली सत्ताओं की ताजपोशी के लिए पूरा ज़ोर लगा रहे हैं।

पूँजीवाद के अपने आन्तरिक अन्तरविरोधों से जन्मने वाले आर्थिक संकट से निपटने के लिए ही पूँजीपति वर्ग को ऐसी सरकार की ज़रूरत पड़ती है, जो मन्दी के दौर में डण्डे के ज़ोर से मज़दूरों को निचोड़ने में और उनके शोषण को और सघन बनाने में उनके वफ़ादार राजनीतिक प्रतिनिधि की भूमिका निभाये और मज़दूर वर्ग की एकता को तोड़े। आर्थिक संकट का यही पूर्वाधार फ़ासीवाद के उभार को भी जन्म देता है यदि वह पूँजीपति वर्ग के राजनीतिक संकट में भी तब्दील हो जाये तो। पूँजीवादी आर्थिक संकट की ज़हरीली कोख में ही फ़ासीवादी कीड़े पलते-पनपते हैं।

यही वजह है कि दुनिया भर में आज धुर दक्षिणपंथी और फ़ासीवादी ताक़तें सत्तासीन हो रही हैं। दीर्घकालिक मन्दी के दौर में भारत के पूँजीपति वर्ग ने भी 2014 में फ़ासीवादी भाजपा का विकल्प चुना और अभी भी भाजपा समूचे पूँजीपति वर्ग की सबसे चहेती पार्टी बनी हुई है। हमारे देश में फ़ासीवादी मोदी सरकार पूँजीपति वर्ग के भारी धनबल और एकमुश्त समर्थन, केन्द्रीय एजेंसियों के इस्तेमाल, चुनाव आयोग की मिलीभगत, ईवीएम में घोटाले के ज़रिये पिछले ग्यारह वर्षों से सत्ता में बनी हुई है क्योंकि एक लम्बे दौर में भारत में फ़ासीवादी ताक़तों ने पूँजीवादी राज्यसत्ता के विभिन्न निकायों में अपनी घुसपैठ की है और इनपर अन्दर से क़ब्ज़ा किया है।

इन ग्यारह वर्षों में मोदी सरकार ने आम मेहनतकश आबादी के ऊपर तकलीफ़ों का पहाड़ लाद दिया है। सरकार ने अप्रत्यक्ष टैक्सों और पेट्रोलियम उत्पादों पर भारी करों के ज़रिये लगातार महँगाई बढ़ायी है, देश में बेरोज़गारी इस वक़्त अपने चरम पर है, छात्रों-नौजवानों-मज़दूरों के आन्दोलनों का दमन किया जा रहा है, मुसलमानों, दलितों, आम स्त्रियों के ख़िलाफ़ उत्पीड़न की घटनाओं में बेतहाशा बढ़ोत्तरी हुई है, विशेषकर आम ग़रीब मुसलमानों का जीवन दूभर कर दिया गया है, जनवादी अधिकारों को सिर्फ़ क़ाग़ज़ों तक सीमित कर दिया गया है और इन सबके बीच पब्लिक सेक्टर कम्पनियों और प्राकृतिक संसाधनों को पूँजीपतियों को औने-पौने दामों में बेचा जा रहा है।

इस भयावह स्थिति पर हमारा ध्यान न जाये इसलिए हमें ‘हिन्दू-मुसलमान’, ‘मन्दिर-मस्जिद’ और ‘पाकिस्तान और चीन से ख़तरा’ जैसे झूठे-फ़र्ज़ी मसलों में उलझाया जाता है और आपस में लड़ाकर असली मुद्दों पर एकजुट होकर लड़ने से रोका जाता है। भाजपा और नरेन्द्र मोदी आज पूँजीपति वर्ग की ज़रूरत है और मोदी सरकार भी पूरी मेहनत और लगन से अपने मालिकों की सेवा करने में लगी हुई है। यही कारण है कि नरेन्द्र मोदी ने सत्ता में आते ही “कारोबार की आसानी” के नाम पर पूँजीपतियों को मज़दूरों की श्रम-शक्ति लूटने की खुली छूट देने का ऐलान कर दिया था। इसलिए ही चार लेबर कोड बनाये गये हैं, ताकि पूँजीपतियों के मुनाफ़े के रास्ते में आने वाले हर क़ानूनी ‘स्पीडब्रेकर’ को भी पूरी तरह हटाया जा सके। मज़दूरों ने वर्षों के वर्ग संघर्ष के दम पर जो भी अधिकार श्रम क़ानूनों के रूप में हासिल किये थे, उन्हें चार लेबर कोड के ज़रिये फ़ासीवादी मोदी सरकार छीन रही है।

भारत में लेबर कोड निर्माण की पृष्ठभूमि

यह तथ्य भी जानना उपयोगी होगा कि चार लेबर कोड को लागू अब किया गया है, पर इसके बनने की शुरुआत भाजपा की अटल बिहारी वाजपयी की सरकार के समय ही हो गयी थी। 1999 में वाजपयी सरकार ने श्रम क़ानूनों में बदलाव लाने के लिए दूसरे श्रम आयोग (Second National Labour Commission) का गठन किया। श्रम आयोग का काम था संगठित व असंगठित क्षेत्र में श्रम क़ानूनों को लचीला बनाने के लिए मसौदा तैयार करना। श्रम आयोग ने 2002 में श्रम क़ानूनों को संहिताओं में बदलने के लिए 1700 पन्नों की रिपोर्ट तैयार की। इसमें भारतीय मज़दूर संघ (भाजपा-आरएसएस की जेबी यूनियन) के भी सुझावों को जगह दी गयी थी। श्रम आयोग द्वारा पेश की गयी रिपोर्ट को देश भर की यूनियनों ने मज़दूर-विरोधी बताया था और इसके ख़िलाफ़ विरोध भी दर्ज करवाया था। हालाँकि यह विरोध एकदिवसीय-दोदिवसीय हड़तालों के रूप में प्रतीकात्मक ही रहा और सरकार को इससे कोई खास दिक़्क़त पेश नहीं आयी।

इसके बाद 2004 के चुनावों में भाजपा की हार के बाद, श्रम आयोग की रिपोर्ट को कांग्रेस सरकार ने तात्कालिक तौर पर ठण्डे बस्ते में डाल दिया। लेकिन यह कहना भी ग़लत नहीं होगा कि कांग्रेस व यूपीए सरकार के 2004-2014 तक के कार्यकाल में भी श्रम क़ानूनों की धज्जियाँ उड़ायी जाती रहीं और नवउदारवादी नीतियों को धड़ल्ले से लागू किया जाता रहा। हालाँकि यूपीए के पहले कार्यकाल के दौरान कुछ कल्याणकारी योजनाओं और क़ानूनों को भी लागू किया गया ताकि मज़दूर वर्ग के असन्तोष पर कुछ ठण्डे छींटे डालने का काम भी हो सके।

ज़ाहिरा तौर पर यह कल्याणवाद पूँजीपति वर्ग को गवारा नहीं था और इसलिए उन्होंने फ़ासीवादी भाजपा के विकल्प को एक बार फिर गम्भीरता से लेना शुरू किया। 2014 चुनावों में भाजपा के विजयी होने के पीछे पूँजीपति वर्ग का यह एकजुट समर्थन ही सबसे बड़ा कारक था। सत्ता में आते ही नरेन्द्र मोदी सरकार ने सबसे पहले

(पेज 12 पर जारी)

‘चार लेबर कोड’ मज़दूरों-कर्मचारियों के अधिकारों पर सबसे बड़ा हमला है!

(पेज 11 से आगे)

श्रम क़ानूनों में बदलाव की शुरुआत की। 2014 में राजस्थान में सबसे पहले दूसरे श्रम आयोग की सिफ़ारिशों को लागू किया गया। 2015 के आर्थिक सर्वेक्षण में राजस्थान सरकार द्वारा किये गये श्रम सुधारों की भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी। ग़ौरतलब है कि राजस्थान सरकार ने ठेका मज़दूर क़ानून की सीमा 20 से बढ़ाकर 50 मज़दूर कर दी थी। इस ‘सुधार’ के बाद से ठेके पर काम करने वाले मज़दूरों की संख्या में बहुत तेज़ी से बढ़ोतरी हुई है। जहाँ 2014-15 में ठेका मज़दूरों की संख्या कुल मज़दूरों की 39.1 फ़ीसदी थी, वहीं 2016-17 में यह बढ़कर 42.5 प्रतिशत हो गयी। यही नहीं, इन ‘सुधारों’ के लागू होने के बाद राजस्थान में बेरोज़गारी की दर भी तेज़ी से बढ़ी। जुलाई 2019 में जब देश में बेरोज़गारी की दर 7.5 फ़ीसदी थी, वहीं राजस्थान में बेरोज़गारी की दर 10.6 फ़ीसदी थी। यानी “श्रम सुधारों” से मज़दूरों का जीवन और भी ज़्यादा असुरक्षित हो गया। मोदी सरकार इसी ‘राजस्थान मॉडल’ को पूरे देश में लागू करना चाह रही थी।

2014-19 के कार्यकाल में ही 29 श्रम क़ानूनों को समाप्त कर संहिताओं में तब्दील कर देने का काम शुरू कर दिया गया और भाजपा शासित राज्यों जैसे उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, हरियाणा, गुजरात व कर्नाटक में इन्हें लागू कर दिया गया। आख़िरकार जुलाई, 2019 में पहली श्रम संहिता यानी ‘मज़दूरी संहिता’ को संसद द्वारा पारित कर दिया गया। इसके बाद मोदी सरकार ने 2020 में कोविड महामारी के दौर में बाक़ी तीनों बिल संसद में पास करवाये। इस तरह चार लेबर कोड अस्तित्व में आये। संसद में पारित होने के बाद से ही मोदी सरकार इसे लागू करने के लिए उतावली थी और आख़िरकार 21 नवम्बर को चुपके से अधिसूचना जारी कर इसे लागू कर दिया गया। आइए ज़रा मोदी सरकार के इन चार लेबर कोडों को लेकर किये जा रहे खोखले दावों पर भी एक नज़र डालते हैं।

लेबर कोड को लेकर मोदी सरकार के झूठे दावे और उनकी सच्चाई

फ़ासीवादी मोदी सरकार लेबर कोड लाने को इस रूप में प्रचारित कर रही है कि इसके लागू होने के बाद मज़दूरों की ज़िन्दगी स्वर्ग हो जायेगी! सरकार व गोदी मिडिया द्वारा चार लेबर कोड को स्वतन्त्र भारत में मज़दूरों के लिए किया गया “सबसे बड़ा सुधार” बताया जा रहा है। सोशल मीडिया से लेकर टीवी-अख़बार तक लेबर कोड की प्रशंसा व सरकारी प्रचार से भरे पड़े हैं। मोदी सरकार को यह इसलिए भी करना पड़ रहा है कि मज़दूरों-कर्मचारियों की एक बड़ी आबादी इस बात को समझ रही है कि यह मज़दूर-विरोधी और पूँजी-परस्त नये क़ानून उनके लिए कितने ख़तरनाक हैं। आइये, इन झूठे दावों की असलियत जानते हैं।

पहला झूठ। संगठित व असंगठित क्षेत्र के 50 करोड़ मज़दूरों को न्यूनतम वेतन मिलेगा।

सच्चाई यह है कि मोदी सरकार न्यूनतम वेतन की क़ानूनी व्यवस्था को ख़त्म करने की फ़िराक़ में है। न्यूनतम मज़दूरी के स्थान पर ‘फ़्लोर लेवल मज़दूरी’ की अवधारणा पेश की गयी है जो कि न्यूनतम मज़दूरी से बेहद कम है। फ़्लोर लेवल मज़दूरी की बात सीधे-सीधे मज़दूरों-कर्मचारियों के न्यूनतम मज़दूरी के क़ानूनी अधिकार के खिलाफ़ जाती है और ऐसी किसी भी अवधारणा को सिरे से ख़ारिज कर देना चाहिए। फ़्लोर लेवल मज़दूरी की बात जानबूझकर इन नये कोडों में डाली गयी ताकि किसी भी मालिक या नियोक्ता के लिए न्यूनतम वेतन देने को बाध्यताकारी न बनाया जा सके। यानी अब मज़दूरी फ़्लोर लेवल के आधार पर तय होगी, जो औसत मज़दूरी से बेहद कम है।

सरकार द्वारा प्रतिदिन के लिए तल-स्तरीय मज़दूरी 178 रुपये तय की गयी है। यानी, इस न्यूनतम मज़दूरी के हिसाब से महीने में 26 दिन काम करने वाले की मासिक मज़दूरी होगी महज़ 4,628 रुपये! इसके अनुसार जिन राज्यों में न्यूनतम वेतन सापेक्षिक तौर पर अधिक मिलता है, वहाँ भी अब इसे कम करने के दरवाज़े खोल दिये गये हैं। अगर फ़्लोर लेवल पर मज़दूरी दी जायेगी तब दिल्ली, केरल, तमिलनाडु जैसे राज्यों में वेतन कम कर दिया जायेगा, जहाँ वेतन अन्य राज्यों की तुलना में अधिक है। इसके अलावा मज़दूरी की परिभाषा के अन्तर्गत केवल मूल या आधार वेतन (बेसिक पे) को शामिल किया है। हर प्रकार के भत्तों को वेतन की परिभाषा से बाहर रखा गया है।

दूसरा झूठ। नये कोडों के ज़रिये पहली बार सभी श्रमिक क़ानूनी दायरे और सुरक्षा के अन्तर्गत आयेंगे।

सच्चाई यह है कि चारों श्रम संहिताएँ एक बहुत बड़ी श्रमिक आबादी को क़ानूनी दायरे से बाहर धकेल रही हैं, जो पहले श्रम क़ानूनों के अन्तर्गत आते थे क्योंकि नये कोडों के अन्तर्गत क़ानूनी सुरक्षा के तहत आने की सीमा को ही मनमाने ढंग से व्याख्यायित किया गया है। मसलन ‘ओएचएस’ संहिता केवल उन्हीं कारखानों में लागू होगी, जहाँ 20 या ज़्यादा मज़दूर काम करते हो (और जहाँ बिजली का प्रयोग होता है) या जहाँ 40 या ज़्यादा मज़दूर काम करते हो (और जहाँ बिजली का प्रयोग नहीं होता है)। 2017-18 के ऐनुअल सर्वे आफ़ इण्डस्ट्री के अनुसार 47.1 प्रतिशत कारख़ाने ऐसे हैं, जहाँ 20 तक मज़दूर काम करते हैं। 33.8 प्रतिशत कारख़ानों में 20-99 मज़दूर काम करते हैं। इसके अनुसार देखा जाये तो मज़दूरों की एक बहुत बड़ी आबादी इस क़ानून के कानून के दायरे से बाहर हो जायेगी।

इसके अलावा, नयी श्रम संहिताओं के तहत अब बड़े प्रतिष्ठानों में स्थायी मजदूरों की नौकरी की सुरक्षा भी ख़तरे में आ जायेगी। पुराने औद्योगिक विवाद अधिनियम के अन्तर्गत 100 या 100 से अधिक मज़दूरों वाले प्रतिष्ठानों में लेऑफ़, छँटनी और तालाबन्दी के लिए सरकार की अनुमति लेनी पड़ती थी। नयी संहिता में इस सीमा को बढ़ाकर 300 मज़दूरों तक कर दिया गया है। परिणामस्वरूप 100 से 300 मज़दूरों वाले मध्यम आकार के प्रतिष्ठानों में कार्यरत मज़दूरों की बड़ी संख्या को कभी भी काम से निकाला जा सकता है। इसके अलावा सरकार जब चाहे इस सीमा को बढ़ा सकती है और इसके लिए इस कोड में ही प्रावधान किया गया है। इसके अलावा ‘ओएचएस’ संहिता ठेका मज़दूरों के लिए बने क़ानून को भी लचीला बना देती है। यह क़ानून ठेकेदार तभी लागू कर सकता है, जब उसके मातहत 50 या इससे ज़्यादा मज़दूर काम कर रहे हो। ठेका प्रथा क़ानून में यह संख्या 20 तक थी। यानी ठेका मज़दूरों का बड़ा तबका किसी भी प्रकार की सुरक्षा व सुविधा से वंचित कर दिया गया है।

तीसरा झूठ। ‘फ़िक्सड टर्म इम्प्लॉयमेंट’ के तहत काम कर रहे मज़दूरों को नियमित कामगारों के समान लाभ और सामाजिक सुरक्षा मिलेगी।

सच्चाई यह है कि ‘फ़िक्सड टर्म इम्प्लॉयमेंट’ के ज़रिये स्थायी रोज़गार के अधिकार को ही छीन लिया गया है। अब कम्पनी मज़दूरों को दिन, महीने के लिए भी क़ानूनी तौर पर रख सकती है यानी ठेका प्रथा को पूरी तरह क़ानूनी बना दिया गया है और मज़दूरों को हर प्रकार की वैधानिक सुरक्षा से वंचित कर दिया गया है। मोदी राज में अब यह ‘न्यू नॉर्मल’ बन जायेगा!

चौथा झूठ। 8 घण्टे का कार्यदिवस ही लागू होगा। कामगारों की “सहमति” के बिना ओवरटाइम नहीं करवाया जा सकता।

श्रम संहिताओं के तहत ओवरटाईम की स्पष्ट व्याख्या जानबूझकर नहीं की गयी है। ओवरटाइम की परिभाषा को ख़त्म करके “पूरक कार्य” और “अनिरन्तर काम” की लच्छेदार भाषा के बहाने ओवरटाइम के लिए मिलने वाली अतिरिक्त मज़दूरी को ख़त्म करने की साज़िश की गयी है। सेक्शन 14 में कहा गया है कि सामान्य दिन के काम के घण्टों से अधिक काम करना ओवरटाइम कहलायेगा, जबकि सामान्य दिन के काम के घण्टे सरकार के नोटिफ़िशन के ज़रिये तय होंगे। अगर सरकार सामान्य दिन में 10 घण्टे काम का नोटिफ़िकेशन जारी करती है, तो 10 घण्टे के बाद किया जाने वाला काम ओवरटाइम कहलायेगा। यानी ओवरटाइम बेगार काम करवाना अब एक सामान्य बात हो जायेगी।

पाँचवा झूठ। आज़ादी के 70 सालों में पहली बार ऐसा होगा जब संगठित व असंगठित क्षेत्र के 50 करोड़ मज़दूरों को सामाजिक सुरक्षा के दायरे में लाया जायेगा।

सच्चाई यह है कि सामाजिक सुरक्षा संहिता में पहली बार मज़दूरों को संगठित व असंगठित की श्रेणी में बाँटा गया है। इस कोड के तहत संगठित क्षेत्र में कार्यरत सीमित आबादी को ही सामाजिक सुरक्षा कोड के तहत आने वाली सुविधाएँ मिलेंगी। वहीं दूसरी तरफ़ 93 प्रतिशत असंगठित व अनौपचारिक मज़दूर, भले ही वह औपचारिक क्षेत्र में कार्यरत हों, उन्हें सरकार द्वारा ‘सामाजिक सुरक्षा फ़ण्ड’ के ज़रिये सामाजिक सुरक्षा मुहैया कराय़ी जायेगी। इसके लिए मज़दूरों को ऑनलाइन पोर्टल पर पंजीकरण करना होगा और नियमित उसे अपडेट रखना होगा। अगर नियमित अपडेट नहीं रखा गया, तो उन्हें सामाजिक सुरक्षा के तहत कोई सुविधा नहीं मिलेगी। यानी जो मज़दूर डिजिटली साक्षर नहीं है, वह इन सुविधाओं से वंचित ही रहेगा। एनएसएसओ 2020-2021 डाटा के अनुसार भारत में सिर्फ़ 2.5 प्रतिशत लोग ही डिजिटली साक्षर हैं। इस हिसाब से मज़दूरों का एक बड़ा हिस्सा पहले ही सामाजिक सुरक्षा के दायरे से बाहर हो जायेगा। अगर ‘सामाजिक सुरक्षा फ़ण्ड’ की बात की जाये, तो इसपर लेबर कोड में कोई ठोस बात नहीं की गयी है कि मज़दूरों को इसके तहत क्या सुविधा मिलेगी, उन्हें यह किस प्रकार हासिल होगा।

छठा झूठ। सभी मज़दूरों को समय पर वेतन मिलेगा।

इसकी असलियत यह है कि मज़दूरी संहिता के सेक्शन 17 के तहत नियोक्ता वेतन का भुगतान दिन, हफ़्ते या महीने के अनुसार कर सकता है। इससे कम्पनियाँ अपनी ज़रूरत मुताबिक मज़दूरों को दिन, हफ़्ते या महीने के आधार पर रख सकती हैं। यानी सब मज़दूरों को अलग-अलग समय पर वेतन दिया जायेगा।

सातवाँ झूठ। असंगठित क्षेत्र के साथ-साथ प्लेटफ़ॉर्म व गिग वर्करों को ईएसआईसी की सुविधा मिलेगी।

सच्चाई यह है कि ईएसआईसी का क़ानून उसी जगह लागू होगा, जहाँ 10 या इससे लोग काम करते हैं। सामाजिक सुरक्षा कोड के तहत कम्पनी चाहे तो इसे नहीं भी लागू कर सकती है। इसके लिए वहाँ कार्यरत अधिकतम मज़दूरों की “सहमति” लेनी होगी और कम्पनी के डायरेक्टर जनरल को पत्र लिखना होगा। इसके साथ ही इस कोड के तहत ईएसआईसी में पंजीकरण करने की ज़िम्मेदारी नियोक्ता की नहीं होगी, बल्कि ख़ुद मज़दूर को श्रम सुविधा पोर्टल के ज़रिये अपना पंजीकरण करना होगा। यानी ईएसआईसी लागू न करने का रास्ता भी अब कम्पनियों के लिए खोल दिया गया है।

आठवाँ झूठ। लेबर कोड लागू होने के बाद श्रम क़ानूनों का सरलीकरण होगा।

हक़ीकत यह है कि सरलीकरण के नाम पर मज़दूरों को मिलने वाले सारे क़ानूनी अधिकार ख़त्म कर दिये गये हैं या उन्हें निष्प्रभावी बना दिया गया। जैसे : स्थायी रोज़गार की कोई सुरक्षा नहीं है। यहाँ तक कि कि श्रम विभाग की भूमिका को भी ख़त्म कर दिया गया है और उसकी जगह एक ट्रिब्युनल स्थापित किया गया है जिसके रजिस्ट्रार को असीमित शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं।

नौवाँ झूठ। निश्चित अवधि के लिए काम कर रहे कर्मचारी एक साल काम करके भी ग्रैच्युटी निकाल सकते हैं।

असल में ग्रैच्युटी के क़ानून को लचीला बना दिया गया है, ताकि कम्पनियाँ चाहें तो एक साल में ही कामगारों को काम से निकाल सकती हैं। अगर पुनः उसी कामगार को वापस काम पर रखा भी जाता है, तब उसे नये कामगार की श्रेणी में शामिल किया जायेगा।

इसके अलावा लेबर कोड में गिग व प्लेटफ़ॉर्म वर्करों के साथ भी धोखा किया गया है। लेबर कोड के अनुसार इन वर्करों के लिए ‘वेलफ़ेयर फ़ण्ड’ बनाया जायेगा और आधार कार्ड से इनके काम को जोड़ा जायेगा। एक तो, इसमें स्पष्ट नहीं किया गया है कि कैसे इससे इन मज़दूरों को सामाजिक सुरक्षा मिलेगी; दूसरा, सरकार हमसे ही टैक्स लेकर हमारे लिये लिए ही ‘वेलफ़ेयर फ़ण्ड’ बनायेगी! इन गोल-मोल बातों को बारीक़ी से समझें तो बड़ी चालाकी से नियोक्ताओं को जवाबदेही के कटघरे से बाहर कर दिया गया है, यानी कम्पनी-प्रबन्धन की कोई ज़िम्मेदारी नहीं है। गिग-प्लेटफ़ॉर्म वर्कर्स को सरकार ने जानबूझकर मज़दूर का दर्जा ही नही नहीं दिया है, ताकि उन्हें सभी अधिकारों से वंचित रखा जा सके। यानी इन मज़दूरों के प्रति इनके मालिकों की कोई ज़िम्मेदारी नहीं होगी। साथ ही लेबर कोड में स्कीम वर्करों जैसे कि आँगनवाड़ीकर्मी, आशकर्मी, मिड डे मील वर्कर, घरेलू कामगारों की पूरी तरह अनदेखी की गयी है। उन्हें न्यूनतम वेतन से लेकर अन्य किसी भी सामाजिक सुरक्षा के दायरे से बाहर रखा गया है। लेबर कोड में निर्माण मज़दूरों के लिए भी काफ़ी लच्छेदार भाषा का प्रयोग किया गया है। जैसे उन्हें नियुक्ति पत्र मिलेगा, सामाजिक सुरक्षा मिलेगी, समय पर वेतन मिलेगा आदि।

(पेज 13 पर जारी)

‘चार लेबर कोड’ मज़दूरों-कर्मचारियों के अधिकारों पर सबसे बड़ा हमला है!

(पेज 12 से आगे)

पर असल में निर्माण मज़दूरों को पीएफ़, ईएसआई से लेकर अन्य सुविधाएँ कैसे मिलेंगी, इसपर कोई ठोस बात नहीं की गयी। इसके अलावा ग्रामीण मज़दूरों, मनरेगा मज़दूरों आदि की करोड़ों की मज़दूर आबादी को किसी भी क़ानूनी मान्यता व अधिकार के दायरे से बाहर रखा गया है।

कुल मिलाकर कहा जाये तो लेबर कोड को लेकर मोदी सरकार द्वारा जो प्रचार किया जा रहा है, वह पूरी तरह झूठ और फ़रेब पर आधारित है।

लेबर कोड लागू होने के बाद मज़दूरों-कर्मचारियों पर क्या असर होगा?

आज हमारे देश में संगठित-औपचारिक क्षेत्र में क़रीब 10 करोड़ मज़दूर-कर्मचारी काम कर रहे हैं। संगठित क्षेत्र के मज़दूरों के लिए आमतौर पर श्रम क़ानून लागू हुआ करते थे। अब तक संगठित क्षेत्र के मज़दूरों-कर्मचारियों को जितने अधिकार प्राप्त थे, जैसे आठ घण्टे का कार्यदिवस, डबल रेट से ओवरटाइम, पीएफपीएफ़, ग्रैचुएटी आदि, इन चार लेबर कोड के ज़रिये उन सबको या तो ख़त्म कर दिया गया है या फिर निष्प्रभावी बना दिया गया है। संगठित क्षेत्र में पहले से ही घटते पक्के रोज़गार के अवसर और अधिकार को और अधिक अस्थायी रूप देने की कोशिश इन चार लेबर कोड्स के ज़रिये की गयी है। ‘फ़िक्स टर्म इम्प्लॉयमेंट’ के ज़रिये सीधे-सीधे स्थायी रोज़गार के अधिकार पर ही डाका डालने का काम किया गया है। दरअसल मोदी सरकार की मंशा संगठित क्षेत्र के मज़दूरों-कर्मचारियों के हालात को भी असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों जैसे अरक्षित बना देने की है ताकि पूँजीपतियों को ‘ईज़ ऑफ डूइंग बिज़नेस’ (धन्धा करने में आसानी) का अधिकार दिया जा सके!। संगठित क्षेत्र पहले से ही सिकुड़ता जा रहा है। अब चार लेबर कोड के ज़रिये मोदी सरकार संगठित क्षेत्र के मज़दूरों को असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों में तब्दील करने का पूरा इन्तज़ाम कर चुकी है।

वहीं, असंगठित-अनौपचारिक क्षेत्र में 43 करोड़ मज़दूर कार्यरत हैं। असंगठित-अनौपचारिक क्षेत्र के मज़दूरों को भी जो अधिकार पहले काग़ज़ी तौर पर प्राप्त थे, उन्हें भी इन लेबर कोडों के ज़रिये छीन लिया गया है। वैसे तो असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों के लिए पुराने श्रम क़ानून भी बिरले ही लागू होते थे, लेकिन जहाँ कहीं भी मज़दूर एकजुट होकर लड़ते थे, वहाँ उन्हें अपने संघर्ष के दम पर ये क़ानूनी हक़ एक हद तक हासिल भी होते थे। मज़दूर आन्दोलन के इतिहास पर एक निगाह डालें तो हम पाते हैं कि जब कभी असंगठित क्षेत्र के मज़दूर भी संगठित होकर लड़े हैं, तब उन्होंने श्रम क़ानूनों को कुछ हद तक अपने पक्ष में लागू भी करवाया है। लेकिन अगर अब असंगठित क्षेत्र के मज़दूर एकजुट हो भी जायें, तो उनके पास क़ानूनी अधिकार के लिए लड़ने का रास्ता भी नहीं बचेगा।

अब हम मज़दूरों-कर्मचारियों के पास क्या रास्ता है?

हमें फ़ासीवादी मोदी सरकार द्वारा इन लेबर कोडों को लागू करने की असल मंशा समझनी होगी। अपने आन्दोलनों और संघर्षों के बूते हासिल किये गये हमारे सभी हकों पर मोदी सरकार का यह सबसे बड़ा फ़ासीवादी हमला है। यह मज़दूरों-कर्मचारियों की पूरी मेहनतकश आबादी को ग़ुलामों में तब्दील करने की फ़ासीवादी क़वायद है। ये चार लेबर कोड पूँजीपति वर्ग को मज़दूरों का शोषण करने की पूरी क़ानूनी आज़ादी देते हैं और मज़दूर वर्ग अपने हकों की हिफाज़त भी न कर पाएँ, इसका भी पुख्ता क़ानूनी इन्तज़ाम करते हैं। इसलिए अब वक़्त आ गया है जब ‘आर या पार’ की लड़ाई के लिए देश का मज़दूर वर्ग अपनी कमर कस ले।

यह वक़्त है कि भारत के सभी संगठित व असगठित मज़दूर-कर्मचारी एक साथ संगठित होकर लड़ें और फ़ासीवादी मोदी सरकार के इस हमले का संगठित होकर जवाब दें। यह वक़्त है जब सभी केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों-संघों (ज़ाहिरा तौर पर बीएमएस को छोड़कर जो इस वक़्त भी मोदी सरकार के सुर में सुर मिला रही है) व कम्पनियों-पेशों आदि की यूनियनों को अपने आपसी मतभेद भुलाकर एक साथ आना चाहिए। सबको एक साथ मिलकर अनिश्चितकालीन आम हड़ताल का आह्वान करना चाहिए और इन लेबर कोड्स के वापस लेने तक अनिश्चितकालीन आम हड़ताल को जारी रखना चाहिए। आज इससे कम कोई भी क़दम मोदी सरकार और मालिकों-पूँजीपतियों के हौसले और बुलंद करेगा और उनको अपने मंसूबों में पूरी तरह से कामयाब होने देगा।

आज सभी केन्द्रीय ट्रेड यूनियन फ़ेडरेशनों को इस निर्णायक क़दम को उठाने के लिए तत्काल पहल लेनी चाहिए। बैंक, रेलवे, बीमा, डाक, परिवहन समेत सरकारी व निजी सेक्टरों के संगठित मज़दूरों-कर्मचारियों में इन फ़ेडरेशनों से जुड़ी यूनियनें मौजूद हैं। अगर ये चाहें तो मोदी सरकार के इस हमले को बिलकुल रोका जा सकता है। लेकिन इसके लिए एकदिवसीय हड़तालों की रस्मअदायगी से आगे बढ़ना होगा। अनिश्चितकालीन आम हड़ताल का आह्वान ही वह निर्णायक क़दम है जिसके द्वारा मोदी सरकार को घुटनों पर लाया जा सकता है। यही समय है मोदी सरकार को मज़दूरों की ताक़त का एहसास कराने का और मज़दूरों के सबसे बड़े हथियार अनिश्चितकालीन आम हड़ताल के इस्तेमाल करने का। अब तक यह बात होती थी कि इस हथियार को बड़े मौक़े पर प्रयोग करेंगे।

अब इससे बड़ा कोई मौक़ा भारत के मज़दूर वर्ग के लिए नहीं हो सकता। अब एक मिनट भी और इन्तज़ार नहीं कर सकते हैं। पानी सिर के ऊपर से जा चुका है!

अब हर साल की तरह एक-दो दिनी हड़ताल की रस्मअदायगी का वक़्त नहीं रहा और न इससे कुछ फ़र्क पड़ेगा। 30 सालों से ऐसी एक-दो दिनी हड़तालें हो ही रही हैं, उनसे कोई फ़र्क पड़ना होता तो बहुत पहले ही पड़ चुका होता। यही कारण है कि ठेकाकरण-अस्थायीकरण बढ़ रहा है और संगठित मज़दूरों की संख्या कम होती जा रही है। अब जन्तर-मन्तर या आज़ाद मैदान में एकदिनी प्रदर्शन का वक़्त नहीं रहा। 2020 में इन चार कोड्स के पारित होने के बाद से भी कई बार एकदिवसीय हड़तालें की गयीं, उससे क्या फ़र्क पड़ा? ये चारों कोड्स कानून के तौर पर आज लागू हो चुके हैं! मोदी सरकार को चार लेबर कोड वापस लेने के लिए मजबूर करना है, तो मज़दूर-कर्मचारी आबादी को अनिश्चितकालीन आम हड़ताल के लिए एकजुट करना ही होगा। इसके लिए केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों व संघों को पहलक़दमी लेनी पड़ेगी क्योंकि अभी भी उनके पास ही संगठित मज़दूरों-कर्मचारियों की ताक़त सबसे ज़्यादा है। **लेकिन अगर अब भी केन्द्रीय ट्रेड यूनियन फ़ेडरेशनें एकदिनी हड़ताल करके अपना “दायित्व निर्वाह” कर लेंगी तो यह बात भी स्पष्ट हो जायेगी कि उनका मज़दूरों-कर्मचारियों के हितों से कुछ लेना-देना नहीं है और मोदी सरकार के साथ मिलकर मज़दूर वर्ग पर इस हमले को अंजाम देने की कार्यवाई में वे भी बराबर ज़िम्मेदार होंगी।** सच तो यह ही कि ये केन्द्रीय यूनियनें अगर अनिश्चितकालीन आम हड़ताल का आह्वान करें तो पूरे देश के मज़दूर-कर्मचारी और स्वतंत्र यूनियनें उनके साथ खड़ी होंगी।

हम संगठित क्षेत्र के मज़दूर-कर्मचारी साथियों से कहेंगे कि वे ज़रूर अपनी यूनियन में इसपर बात करें। अपने यूनियन नेतृत्व से तत्काल इस दिशा में क़दम बढ़ाने के लिए कहें। अगर हम अब भी इसमें देर करेंगे और केवल एकदिवसीय प्रतीकात्मक हड़तालों तक हड़ताल के अमोघ अस्त्र की ताक़त को सीमित कर देंगे तो मज़दूरों-कर्मचारियों को ख़ुद को और आने वाली पीढ़ी को ग़ुलामी के लिए तैयार कर लेना चाहिए। पहले ही इस काम में बहुत देर हो चुकी है। **अनिश्चितकालीन आम हड़ताल ही वह अचूक शस्त्र है जिसका इस्तेमाल करके आज फ़ासीवादी मोदी सरकार को अपने क़दम पीछे हटाने के लिए मजबूर किया जा सकता है।** आप तत्काल अपने यूनियन नेतृत्व पर इस दिशा में ठोस कार्यवाई के लिए दबाव बनाएँ।

हम असंगठित क्षेत्र के मज़दूर साथियों से भी कुछ ज़रूरी बातें साझा करना चाहते हैं। आप यह मत सोचिए कि चार लेबर कोड्स का मसला आपका मसला नहीं है। आप सोच रहे होंगे कि आपके लिए क़ानून पहले भी बिरले ही लागू होते थे, तो अब क्या नया फ़र्क पड़ेगा? साथियो, फ़र्क पड़ता है! यह बात सच है कि काग़ज़ पर लिखे क़ानून पहले भी लागू नहीं होते थे, लेकिन जब तक क़ानून मौजूद थे, तो एकजुट होकर लड़कर हम उन्हें लागू करवा सकते थे। पूरे देश के मज़दूर आन्दोलन में इसके कई उदाहरण हैं कि जब असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों ने भी संगठित होकर और संघर्ष के बूते एक हद तक अपने क़ानूनी अधिकार लागू करवाये। लेकिन अब अगर हम संगठित भी हो जायें, तो लड़ाई के क़ानूनी रास्ते भी बन्द किये जा चुके हैं। **इसलिए इन नयी श्रम संहिताओं के ज़रिये हमारे संगठित होकर संघर्ष करने के अधिकार पर भी हमला किया जा रहा है और हमारी स्थिति को और भी अरक्षित बनाया जा रहा है।** मालिकों-पूँजीपतियों को हमारा शोषण करने का क़ानूनी अधिकार देकर हमें हमेशा कच्चे कर्मचारी या मज़दूर के तौर पर ही खटने के लिए छोड़ दिया गया है। चार लेबर कोड लागू होने के बाद अब काग़ज़ों पर लिखे क़ानूनी अधिकार भी नहीं रहे। **इसलिए हमें भी इन क़ानूनों के विरुद्ध संघर्ष में और अनिश्चितकालीन आम हड़ताल में बढ़-चढ़कर भागीदारी करनी होगी।**

साथ ही औपचारिक-अनौपचारिक क्षेत्र में कार्यरत सभी संगठित-असंगठित मज़दूरों-कर्मचारियों को यह बात भी स्पष्ट होनी चाहिए कि जो क़ानून पहले भी मौजूद थे, वे मज़दूरों-कर्मचारियों को जायज़ हक़ व बेहतर सम्मानजनक जीवन देने के लिए कत्तई काफ़ी नहीं थे। **दरअसल इन चार लेबर कोड्स को वापस लेने के लिए जो संघर्ष होगा, वह एक लम्बी लड़ाई की शुरुआत होगी।** ज़ाहिरा तौर पर पुराने श्रम कानूनों में भी ऐसे बदलाव किये जाने चाहिए, जिससे समूचे मज़दूर वर्ग को लाभ हो। जैसे : **सबको रोज़गार का अधिकार मिले, स्थायी रोजगार मिले और ठेका प्रथा ख़त्म हो, नियमित प्रकृति के काम में अस्थायी भर्ती पर रोक हो, न्यूनतम वेतन कम से कम 30,000/- रुपये हो, रोज़गार न मिलने की सूरत में बेरोज़गारी भत्ता मिले, सभी कामगारों को ईएसआई, पीएफ़, पेंशन आदि सुविधाएँ मिलें। ट्रेड यूनियन बनाने के क़ानून का सरलीकरण हो। एस्मा जैसे मज़दूर-विरोधी क़ानून को ख़त्म किया जाये और हड़ताल करने के अधिकार को अपराध न बनाया जाये। ज़ाहिरा तौर पर ये सभी संघर्ष भी भविष्य में लड़े जायेंगे। पर अभी पहला तात्कालिक संघर्ष का मुद्दा यह है कि तानाशाहाना ढंग से लागू किये गये इन फ़ासीवादी लेबर कोड्स को वापस लेने के लिए मोदी सरकार को एकजुट होकर झुकाया जाये।**

आज समूचा मज़दूर वर्ग संगठित और एकजुट होकर ही मोदी सरकार को यह चेतावनी दे सकता है कि इन वह मज़दूर-विरोधी श्रम संहिताओं को थोपने की हिमाक़त न करे। अगर हम तत्काल इन श्रम संहिताओं के ख़िलाफ़ लड़ने के लिए एकजुट नहीं होते, अगर हम अनिश्चितकालीन आम हड़ताल का रास्ता अपनाकर मोदी सरकार को इन श्रम संहिताओं को वापस लेने के लिए बाध्य करने के वास्ते संघर्ष की आज ही शुरुआत नहीं करते हैं, तो कल बहुत देर हो जायेगी। इसलिए देश की सभी यूनियनों और संगठनों से अपील है कि एक हो जाओ! एक होकर इन फ़ासीवादी लेबर कोड्स को वापस लिये जाने तक अनिश्चितकालीन आम हड़ताल का आह्वान करो!

इलाहाबाद विश्वविद्यालय में छात्र आन्दोलन को मिली शानदार जीत के मायने

● प्रशान्त

यूँ ही उलझती रही है ज़ुल्म से ख़ल्क़
न उनकी रस्म नई है, न अपनी रीत नई
यूँ ही खिलाये हैं हमने आग में फूल
न उनकी हार नई है न अपनी जीत नई।

– फ़ैज़ अहमद फ़ैज़

बीते 25 नवम्बर को 'दिशा छात्र संगठन' के नेतृत्व में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के छात्रों ने अपनी जुझारू एकजुटता से जीत हासिल कर इलाहाबाद विश्वविद्यालय के इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ा है। इस शानदार जुझारू संघर्ष ने प्रशासन को न केवल छात्र-छात्राओं के फ़र्ज़ी निलम्बन को वापस लेने के लिए बाध्य किया बल्कि इसके कारण छात्रों को आतंकित करने वाले चीफ़ प्रॉक्टर को भी इस्तीफ़ा देने के लिए मजबूर होना पड़ा है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के छात्रों ने इतिहास के इस सबक को फिर से सही साबित किया है कि आम मेहनतकश जनता और नौजवानों की एकजुट ताक़त निरंकुश से निरंकुश सत्ता को घुटने टेकने पर मजबूर कर देती है। इस संघर्ष ने फिर से यह साबित किया है कि 'पूरब का ऑक्सफ़ोर्ड' कहे जाने वाले विश्वविद्यालय में प्रशासन और सत्ता के नापाक गठजोड़ ने भले ही शैक्षणिक माहौल को बर्बाद करने में कोई कसर नहीं छोड़ी हो लेकिन यहाँ के छात्रों में हक़ और न्याय के लिए लड़ने का माद्दा अभी भी बरक़रार है। इस आन्दोलन ने विश्वविद्यालय प्रशासन और उसके लग्गुओं-भग्गुओं की तमाम धमकियों, तिकड़मों, झूठ-फरेब तथा पुलिसिया धौंस को धत्ता बताते हुए विश्वविद्यालय प्रशासन को घुटने पर ला दिया। जिस विश्वविद्यालय को बच्चों के स्कूल में बदलने की कवायद लम्बे समय से जारी थी, छात्रों के संघर्ष ने उसे फिर से विश्वविद्यालय की गरिमा प्रदान की है। शाम को 5:00 बजे के बाद जिस परिसर में प्रवेश को रोक कर शमशान जैसे ख़ामोशी क़ायम कर दी जाती थी, वहाँ पर छात्रों के नारे, कविता पाठ और गिटार की आवाज़ गूंज रही थी और अब खून का घूँट पीकर खामोश होने की बारी विश्वविद्यालय प्रशासन की थी। क्रान्तिकारी नेतृत्व में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के छात्रों ने ठण्ड, भूख और दमन की सम्भावना को झेल कर अपनी बुलन्द आवाज़ को ज़िन्दा रखा। यही इस शानदार जीत का खुला राज़ है।

फ़ासीवादी मोदी सरकार के सत्तासीन होने के बाद से ही देशभर में लोकतान्त्रिक आवाज़ों और जनवादी स्पेस का गला घोंटा जा रहा है। देश की सभी संस्थाओं में ऊपर से नीचे तक फ़ासीवादी जकड़बन्दी लगातार मज़बूत होती जा रही है। भाजपा सरकार द्वारा मेहनतकश जनता पर हमले का दौर बदस्तूर जारी है। चार लेबर कोड मेहनतकशों पर अब तक का सबसे बड़ा फ़ासीवादी हमला है। इसी तरह कुछ साल पहले मोदी सरकार द्वारा लागू 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020' मेहनतकश अवाम के घरों के बच्चों पर एक बड़ा हमला था। जैसे-जैसे नयी शिक्षा नीति पर अमल हो रहा है, वैसे-वैसे उसकी सच्चाई भी आम जनता के सामने खुलती जा रही है। विश्वविद्यालयों में बेतहाशा फ़ीस वृद्धि हो रही है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में पिछले चार सालों में नियमित कोर्स के लिए छः गुना से ज़्यादा फ़ीस बढ़ायी जा चुकी है और हर साल 10 फ़ीसदी की फ़ीस वृद्धि की जा रही है।

विश्वविद्यालयों में लम्बे संघर्षों और अकूत कुर्बानियों से हासिल जनवादी अधिकारों पर सुरक्षा और शान्ति के नाम पर प्रशासनिक बुलडोज़र चलाया जा रहा है। अभी हाल ही में प्रशासन द्वारा अनुशासनात्मक कार्रवाई का हवाला देते हुए एक निरंकुश फ़रमान जारी किया गया जिसके ज़रिये परिसर में बिना अनुमति छात्र गतिविधियों पर प्रत्यक्ष तौर पर रोक लगा दी गयी है। शाम को पाँच बजे के बाद विश्वविद्यालय परिसर में छात्रों के प्रवेश पर रोक लगी हुई है। परिचय-पत्र की जाँच के नाम पर विद्यार्थियों को परेशान किया जा रहा है। पिछले दिनों विश्वविद्यालय के इतिहास में ऐसा पहली बार हुआ जब सुरक्षाकर्मियों ने छात्रों पर गोली तक चलायी। वास्तव में, तमाम विश्वविद्यालयों की तरह इलाहाबाद विश्वविद्यालय में भी प्रशासन की गुण्डागर्दी, छात्रों के साथ गाली-गलौच, मारपीट, हर प्रकार की छात्र गतिविधि पर रोक, फ़र्ज़ी निलम्बन-निष्कासन और फ़र्ज़ी मुकदमे आम बात बन गयी थी। जबकि संघियों और उसके बगलबच्चा संगठन के कार्यक्रम न केवल बेरोकटोक हो रहे हैं बल्कि प्रशासन की अगुवाई में करवाये जा रहे हैं। छात्रों-युवाओं में इतना डर बैठा दिया गया था कि आम छात्रों की तो बात छोड़ दीजिये तमाम छात्र नेता भी चूँ तक नहीं बोल पाते थे।

इन प्रतिकूल परिस्थितियों के बीच 'दिशा छात्र संगठन' छात्रों के जनवादी अधिकारों के लिए, परिसर में स्वस्थ राजनीतिक-सांस्कृतिक माहौल बनाने के लिए पिछले लम्बे समय से छात्रों को जागरूक-संगठित करता रहा है। यही वजह थी कि प्रशासन की नज़रों में 'दिशा छात्र संगठन' के कार्यकर्त्ता और उनकी गतिविधियाँ बुरी तरह से चुभ रही थीं। किसी भी प्रगतिशील छात्र संगठन की गतिविधियों पर रोक लगाने के लिए प्रशासन ने गुण्डागर्दी, कार्यक्रम करने के लिए अनुमति की बाध्यता, कार्यक्रमों के प्रचार पर अघोषित रोक और "बाहरी" होने का आरोप लगाने आदि का हथकण्डा अपनाया। लेकिन इससे कोई हल निकलता न देख विश्वविद्यालय प्रशासन ने 'दिशा' के कार्यकर्ताओं के फ़र्ज़ी निलम्बन का रास्ता चुना। लेकिन प्रशासन की यह गुण्डागर्दी इस बार उल्टी पड़ गयी।

दरअसल यह पूरा मामला 15 अक्टूबर को शुरू हुआ जब 'दिशा छात्र संगठन' के कुछ कार्यकर्ता विश्वविद्यालय में पर्चा वितरित कर रहे थे और 'दिशा' के सदस्यों का एक समूह सामूहिक अध्ययन कर रहा था। तभी सुरक्षाकर्मी आकर छात्रों से बदसलूकी करने लगे और एक गार्ड ने तो संगठन के एक सदस्य का कॉलर पकड़ लिया तथा छात्राओं को धक्का देने लगा। इस गुण्डागर्दी के ख़िलाफ़ 'दिशा छात्र संगठन' के समर्थन में सैकड़ों छात्र एकत्रित हो गये जिसके बाद एफसीआई परिसर में सभा का आयोजन किया गया। सभा के बाद छात्रों का जुलूस मेन गेट पहुँचा तो सुरक्षाकर्मियों ने गेट बन्द कर दिया। बाद में छात्रों की बढ़ती भीड़ और जुझारूपन को देखते हुए उन्हें गेट खोलना पड़ा और जुलूस प्रॉक्टर ऑफिस पहुँचा। प्रॉक्टर कार्यालय पर सभा का आयोजन किया गया और अपनी माँगों के समर्थन में प्रॉक्टर के माध्यम से कुलपति को ज्ञापन सौंपा गया।

ज्ञापन में उठायी गयी माँगों पर काम करने की जगह प्रशासन ने उल्टे आन्दोलन का नेतृत्व कर रहे 'दिशा छात्र संगठन' के चन्द्रप्रकाश को बिना किसी पूर्व सूचना के निलम्बित कर परिसर में उसके प्रवेश को प्रतिबन्धित कर दिया।। अपने निलम्बन और परिसर प्रवेश प्रतिबन्ध से अनजान चन्द्रप्रकाश जब 27 अक्तूबर को क्लास करने के लिए जा रहे थे तभी सुरक्षाकर्मी उनसे बदतमीज़ी करने लगा। जब चन्द्रप्रकाश और अन्य छात्रों ने इसका विरोध किया, तब सुरक्षाकर्मी छात्रों से गाली-गलौज करने लगा और चन्द्रप्रकाश के साथ मारपीट करने लगा। बाद में चन्द्रप्रकाश को खींच कर वह एक बिल्डिंग के पीछे ले जाने लगा। जब चन्द्रप्रकाश ने इसका विरोध किया और वहाँ उपस्थित छात्र विडियो बनाने लगे तब जाकर सुरक्षाकर्मी शशिकान्त ने बताया कि चन्द्रप्रकाश के विश्वविद्यालय प्रवेश पर बैन लगाया गया है। इस बदसलूकी के ख़िलाफ़ सैकड़ों छात्रों ने 28 अक्टूबर को विश्वविद्यालय के मुख्य द्वार को बन्द कर दिया और पूरे दिन प्रदर्शन करते रहे। प्रदर्शनरत छात्रों से मिलने आये चीफ़ प्रॉक्टर ने प्रदर्शन स्थल पर पहुँचते ही छात्रों को धमकाना शुरू कर दिया और मारने-पीटने की धमकी देने लगे। इसके बाद छात्रों ने नारेबाजी शुरू कर दी। डीएसडब्ल्यू के समझाने पर छात्र शान्त हुए और अपनी माँगों का ज्ञापन प्रशासन को सौंपा। छात्रों ने मुख्यतः तीन माँगें उठायी- 1. चन्द्रप्रकाश के साथ गाली-गलौज तथा मारपीट करने वाले सुरक्षाकर्मी शशिकान्त और दीपचन्द की तत्काल सेवा समाप्त की जाये और उचित विधिक कार्यवाही की जाये; 2. चन्द्रप्रकाश के ख़िलाफ़ भ्रामक प्रचार करने वाले प्रोक्टोरियल बोर्ड के सदस्यों पर प्रशासनिक कार्रवाई की जाये और 3. चन्द्रप्रकाश समेत अन्य सभी छात्रों के ग़ैरकानूनी निलम्बन और परिसर में प्रवेश पर लगी रोक को तत्काल वापस लिया जाये।

अभी यह मामला चल ही रहा था कि 20 नवम्बर को मशहूर शायर फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ के स्मृति दिवस पर सांस्कृतिक कार्यक्रम की सूचना देने गये 'दिशा छात्र संगठन' के कार्यकर्ता सौम्या, पूजा और संजय को प्रॉक्टर ऑफिस में बन्धक बनाकर रखा गया तथा चीफ़ प्रॉक्टर राकेश सिंह और अतुल नारायण सिंह द्वारा दो घण्टे से ज़्यादा समय तक मानसिक उत्पीड़न किया गया। सौम्या और पूजा को प्रॉक्टर द्वारा जातिसूचक गलियाँ दी गयी। संजय और सौम्या को प्रॉक्टर बार-बार पटक कर मारने की धमकी देता रहा। सौम्या ने जब प्रॉक्टर के इस निरंकुश व्यवहार का विरोध किया तो प्रॉक्टर ने सौम्या पर माफ़ीनामा लिखने के लिए दबाव बनाया। सौम्या के दुबारा विरोध करने पर प्रॉक्टर ने सौम्या और संजय को तत्काल प्रभाव से निलम्बित कर इनके परिसर में प्रवेश को प्रतिबन्धित कर दिया। निलम्बन पत्र देने के बाद सौम्या और पूजा को छोड़ दिया गया, लेकिन संजय को प्रॉक्टर ऑफिस में बिठाये रखा गया और लाठियों से मारने की धमकी प्रॉक्टर राकेश कुमार और उपप्रॉक्टर अतुल नारायण सिंह देते रहे।

इसके पहले 'दिशा' के कार्यकर्ता चन्द्रप्रकाश को निलम्बित किया गया था और गार्डों द्वारा मारपीट की कोशिश की गयी थी। प्रॉक्टर द्वारा तीन छात्रों को बन्धक बनाने की सूचना जब छात्रों को मिली, तब छात्र सैकड़ों की संख्या में प्रॉक्टर ऑफिस पर इकट्ठा हो गये। छात्रों ने जब प्रॉक्टर ऑफिस का घेराव शुरू किया तब जाकर संजय को छोड़ा गया। प्रॉक्टोरियल बोर्ड की इस तानाशाही और निरंकुशता के ख़िलाफ़ छात्रों ने पूरे परिसर में मार्च निकाला, लाइब्रेरी गेट पर शाम तक बैठे रहे और इसके बाद क्रमिक धरने की शुरुआत हुई। 24 नवम्बर की सुबह जब आन्दोलन शुरू हुआ तो हज़ारों की संख्या में छात्र प्रदर्शन स्थल पर छात्र इकट्ठा हो गये। शाम होने पर भी छात्र डटे रहे। इस दौरान प्रशासन से दो दफ़ा बात हुई लेकिन कोई नतीजा नहीं निकला जिसके बाद आन्दोलन को क्रमिक धरने से अनिश्चितकालीन धरने में तब्दील कर दिया गया।

आन्दोलन शुरू होने के बाद से ही प्रॉक्टर राकेश सिंह और अतुल नारायण सिंह शिक्षक पद की मर्यादा को तार-तार करते हुए झूठ बोलने के नये-नये कीर्तिमान गढ़ रहे थे। छात्रों पर प्राक्टोरियल बोर्ड द्वारा तोड़-फोड़ करने के फ़र्ज़ी आरोप लगाने से शुरू हुआ सिलसिला, दाँत से काटने के झूठे आरोप लगाने तक नहीं रुका। यहाँ तक कि राकेश सिंह ने सारी हदें पार करते हुए छात्रों को आतंकी, देशविरोधी और नक्सली तक बना डाला! आन्दोलन शुरू होने के दिन प्रशासन ने छात्रों के मनोबल को तोड़ने के लिए इस ठण्ड के मौसम में सुबह से ही कई टैंकर पानी लाइब्रेरी गेट की सड़क पर गिरवा दिया था। इससे भी मन नहीं भरा तो प्रशासन द्वारा सबमर्सिबल से सड़क पर पानी भर दिया गया। छात्र आन्दोलन में शामिल न हो सके इसके लिए जानबूझकर 2 दिन के लिए स्नातक की सभी कक्षाओं को रद्द कर दिया गया। लेकिन इन सब तिकड़मों के बाद भी छात्रों का हुजूम सड़कों पर उतरा और प्रशासन के मंसूबों पर पानी फिर गया। सोमवार यानी 24 नवम्बर की शाम को जब क्रमिक आन्दोलन को अनिश्चितकालीन आन्दोलन में बदला गया तब प्रशासन ने जानबूझकर प्रदर्शन स्थल की बिजली काट दी। जिस समय बिजली काटी गयी, उस समय 'दिशा छात्र संगठन' की सांस्कृतिक टीम 'राजा का बाजा' नाटक का मंचन करने जा रही थी। सैकड़ों छात्रों ने प्रशासन की इस साज़िश का जबाब देते हुए अपने-अपने मोबाइल की फ्लैश लाइट जला दी और सफलतापूर्वक नाटक का मंचन किया गया। पूरी रात छात्र मुस्तैदी से कैम्पस में ही टिके रहे। रात भर क्रान्तिकारी गीत, कविता पाठ, रैप सॉन्ग आदि का सिलसिला चलता रहा। सालों बाद इलाहाबाद विश्वविद्यालय रात में इतनी गुलज़ार रही। 'रिक्लैम द नाईट, रिक्लैम द राइट' का नारा बुलन्द करते हुए दर्जन भर से ज़्यादा लड़कियाँ पूरी रात परिसर में रहीं। इतिहास गवाह रहा है कि आधी आबादी की भागीदारी के बग़ैर कोई भी अन्दोलन किसी मुकम्मल जीत पर नहीं पहुँच सकता है। इस आन्दोलन को जीत तक पहुँचाने में स्त्री साथियों की जुझारू भागीदारी ने बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

दूसरे दिन शाम तक प्रशासन ने घुटने टेकना शुरू कर दिया और अन्ततः देर रात प्रशासन को छात्रों की सभी माँगों को मानने पर मजबूर होना पड़ा। आन्दोलन की जीत के बाद परिसर में आन्दोलन स्थल से शुरू होकर छात्रसंघ भवन स्थित शहीद लाल पद्मधर की प्रतिमा तक विजय जुलूस निकाला गया जहाँ एक सभा का आयोजन किया गया। छात्रों की एकजुटता के आगे झुकते हुए प्रशासन को न केवल छात्रों का निलम्बन वापस लेना पड़ा बल्कि साफ़ पानी, साफ़-सफाई समेत विभिन्न समस्याओं के निवारण पर आश्वासन देना पड़ा जिस दिशा में अब काम शुरू भी हो चुका है। पिछले लम्बे समय से बात-बात पर छात्रों को निलम्बित करने की आदत के शिकार प्रशासन को इस बार छात्र-छात्राओं ने अपनी एकजुटता से मुँहतोड़ जवाब दिया। छात्रों के साथ गुण्डागर्दी करने वाले चीफ़ प्रॉक्टर राकेश

(पेज 15 पर जारी)

बनारस की दालमण्डी में विनाशलीला रचता योगी सरकार का साम्प्रदायिक फ़ासीवादी बुलडोज़र

● ध्रुव

उत्तर प्रदेश की योगी सरकार का साम्प्रदायिक फ़ासीवादी बुलडोज़र "विकास" की एक और परियोजना अंजाम देने में जुटा हुआ है। बनारस के दालमण्डी इलाक़े की मुख्य सड़क को चौड़ा करने के बहाने सारी दुकानों को ध्वस्त किया जा रहा है। पूरा मीडिया का तंत्र इस कार्रवाई की चटखारे ले-लेकर रिपोर्टिंग करने में लगा हुआ है। अख़बारों से लेकर टीवी चैनलों तक लगातार दालमण्डी के सवाल पर इस तरह से रिपोर्टिंग की जा रही है जिससे इसके ज़रिये अधिकतम सम्भव साम्प्रदायिक उन्माद पैदा किया जा सके। विरोध करने वालों की धार्मिक पहचान को विभिन्न तरीक़ों से मुद्दा बनाकर प्रचारित किया जा रहा है। जिस परियोजना को योगी सरकार अपनी सरकारी मशीनरी के दम पर रातों-रात अंजाम दे सकती है, उसे कई महीनों से जानबूझकर धीरे-धीरे अंजाम दिया जा रहा है ताकि साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण का तन्दूर लम्बे समय तक गर्म रखा जा सके।

ग़ौरतलब है कि इस परियोजना की ज़द में लगभग 10 मस्जिदों समेत 150 से अधिक पुरानी इमारतें व घर आने वाले हैं। सरकार इसे काशी विश्वनाथ मन्दिर तक बेहतर पहुँच और ट्रैफ़िक सुधार का हिस्सा बता रही है; जबकि काशी विश्वनाथ के कॉरीडोर की परियोजना पहले ही पूरी हो चुकी है और मन्दिर तक पहुँचने के लिए चौड़ी सड़क बनायी जा चुकी है। लेकिन हिन्दू आबादी की "धार्मिक भावना" के तुष्टीकरण का कार्ड खेलते हुए और मन्दिर तक पहुँचने के नाम पर सुगम रास्ता तैयार करने का हवाला देते हुए इलाक़े की अल्पसंख्यक आबादी को निशाना बनाया जा रहा है ताकि इसी बहाने पूरे इलाक़े में साम्प्रदायिक उन्माद की आग लगायी जा सके। अभी बहुत समय नहीं बीता जब इसी इलाक़े में ज्ञानवापी मस्जिद के नाम पर साम्प्रदायिक नफ़रत फैलाने की कोशिश की गयी थी। इस इलाक़े में सदियों से छोटे दुकानदार, बुनकर, मेहनतकश परिवार, जिनमें से बड़ी आबादी मुस्लिम समुदाय से है, अपनी रोज़मर्रा की ज़िन्दगी साथ-साथ जी रहे हैं। दालमण्डी की गलियों में आये दिन बुलडोज़र खड़ा करके इस आबादी के बीच योगी सरकार के ख़ौफ़ को स्थापित करने की कोशिश की जा रही है। इस साम्प्रदायिक एजेण्डे के ख़िलाफ़ जो भी आवाज़ उठाने की कोशिश कर रहा है, योगी सरकार उसका लगातार दमन कर रही है। इस मामले में अब तक दो नामजद व्यक्तियों मोहम्मद सलीम और इमरान उर्फ़ बबलू सहित लगभग 30 अज्ञात महिलाओं और पुरुषों के ख़िलाफ़ मामला दर्ज किया गया है।

वैसे तो पिछले लम्बे समय से दालमण्डी की मुख्य सड़क को चौड़ा करने की बातें शुरू हो गयी थीं लेकिन बीते 22 जुलाई 2025 को योगी सरकार ने दालमण्डी की नयी सड़क से चौक थाने तक लगभग 650 मीटर लम्बी सड़क को लगभग 17 मीटर चौड़ा करने का अन्तिम आदेश जारी किया। 'द टाइम्स ऑफ इण्डिया' की रिपोर्ट के अनुसार इसकी कुल अनुमानित लागत 215.88 करोड़ रुपये है, जिसमें से लगभग 200 करोड़ रुपये प्रभावित भवनों के मुआवज़े के लिए निर्धारित किये गये हैं। परियोजना के तहत सड़क के दोनों ओर से 8.5-8.5 मीटर का हिस्सा काटा जायेगा, जिससे वर्तमान चौड़ाई 2.5-5 मीटर से बढ़कर 17 मीटर हो जायेगी। अप्रैल 2025 में मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ के निर्देश पर डीपीआर तैयार किया गया था, और 2 करोड़ रुपये की प्रारम्भिक राशि जारी हुई। अक्टूबर 2025 से ध्वस्तीकरण शुरू हो चुका है, जिसमें 13 भवन तोड़े जा चुके हैं, जबकि कुल 187 संरचनाएँ प्रभावित बतायी जा रही हैं। हालाँकि इस सबके पीछे असली कहानी पूर्वांचल की मुस्लिम आबादी के बड़े हिस्से की आर्थिक रीढ़ को तोड़ देने की कोशिश है, ताकि उनके अन्यीकरण की फ़ासीवादी साज़िश को सुगमता से अंजाम दिया जा सके। काशी विश्वनाथ कॉरीडोर के निर्माण के दौरान भी ऐसा ही हुआ था, जहाँ 300 से अधिक दुकानें-घर तोड़े गये थे और उनमें अधिकांश मुस्लिम समुदाय से जुड़े लोगों के थे।

दालमण्डी में सड़क चौड़ीकरण के नाम पर जो कार्रवाई हो रही है, यह कोई पहली कार्रवाई नहीं है। योगी सरकार का बुलडोज़र मॉडल लगातार ग़रीब-गुरबा आबादी को रौंदते हुए और साम्प्रदायिक उन्माद पैदा करते हुए "विकास" का एक नया मॉडल तैयार करता जा रहा है। वाराणसी में ही पहले भी कश्मीरीगंज और आदमपुर की पुरानी दुकानों को बिना नोटिस दिये हटा दिया गया था। लखनऊ में अकबरी गेट और अमीनाबाद के आसपास बुलडोज़र चलाकर "विकास" के नाम पर दर्जनों छोटे कारोबार उजाड़ दिये गये। इलाहाबाद में भी कई मुस्लिम मोहल्लों के घरों को काग़ज़ पूरे होने के बावजूद "अवैध" कहकर तोड़ दिया गया। कानपुर के बाबूपुरवा और बेकनगंज में भी यही मॉडल लागू किया गया, जहाँ सड़क चौड़ीकरण के नाम पर दुकानें गिरा दी गयीं। यह सिलसिला साफ़ दिखाता है कि सरकार का टारगेट हमेशा वही इलाक़े होते हैं जहाँ ग़रीब-मेहनतकश या मुसलमानों की आबादी ज़्यादा है।

ज़ाहिर है कि योगी सरकार के 'राज' में उत्तर प्रदेश की जनता भयंकर तबाही-बदहाली में जी रही है। शिक्षा, स्वास्थ्य या रोज़गार जैसे सभी मामलों में उत्तर प्रदेश एक फिसड्डी राज्य बना हुआ है। भाजपा के ही साँसद द्वारा राज्यसभा में दी गयी जानकारी के अनुसार उत्तर प्रदेश में लगभग 46.36 % बच्चे भूख और कुपोषण के शिकार हैं और 34 ज़िलों में यह दर 50 % से अधिक है। नीति आयोग के आँकड़े दिखाते हैं कि उत्तर प्रदेश स्वास्थ्य सुविधाओं के मामले में देश में लगभग सबसे नीचे है, जहाँ मातृ मृत्यु दर राष्ट्रीय औसत से दोगुनी है और ग़रीब परिवार इलाज के अभाव में रोज़ाना मौत और कर्ज़ के बीच फँसे रहते हैं। युवा भयंकर बेरोज़गारी की मार झेल रहे हैं। लाखों नौजवान वर्षों से परीक्षाओं, पेपर लीक और अधर में लटकी भर्तियों के बीच अपना भविष्य खोते जा रहे हैं। यह प्रदेश देश का सबसे बड़ा प्रवासी मज़दूर आपूर्तिकर्ता राज्य बन चुका है, जहाँ काम न मिलने के कारण लोग रोज़गार की तलाश में बड़े शहरों और दूसरे राज्यों में पलायन करने को मजबूर हैं।

इन तमाम बुनियादी सवालों पर आम जनता का ध्यान ना जाये इसलिए योगी सरकार अपने साम्प्रदायिक फ़ासीवादी राजनीति के एजेण्डे के तहत 'बुलडोज़र राज' की नीति अपनाती है। यही कारण है कि बुलडोज़र की कार्रवाई अक्सर उन्हीं ग़रीब इलाक़ों, ख़ासकर मुस्लिम बस्तियों, पर दिखायी देती है जहाँ पर सरकार को आम जनता के बीच साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण को बढ़ावा देने का मौक़ा ज़्यादा मिल सकता है। आज आम जनता को जाति-धर्म की पहचान से इतर एकजुट होकर योगी सरकार के बुलडोज़र राज के ख़िलाफ़ सड़कों पर उतरने की ज़रूरत है। तभी हम इनकी साम्प्रदायिक फ़ासीवादी राजनीति के समूचे एजेण्डे के ख़िलाफ़ एक मुक्कमल लड़ाई लड़ सकते हैं।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय में छात्र आन्दोलन को मिली शानदार जीत के मायने

(पेज 14 से आगे)

सिंह को इस्तीफ़ा देना पड़ा। इस अंधेरे वक़्त में छात्र आन्दोलन को मिली यह जीत तमाम विश्वविद्यालयों, शैक्षणिक संस्थानों और मज़दूर साथियों के संघर्ष के लिए एक ऊर्जा स्रोत के रूप में काम करेगी।

मज़दूर साथियो, 'दिशा' के नेतृत्व में इलाहाबाद विश्वविद्यलय के छात्रों की यह शानदार लड़ाई कई मायनों में हमारे लिए भी महत्वपूर्ण है। हमें अपने आने वाले संघर्षों के लिए इस आन्दोलन से कुछ ज़रूरी सबक निकलने होंगे। सबसे ज़रूरी सबक यह है कि बिना किसी क्रान्तिकारी नेतृत्व के कोई भी स्वत:स्फूर्त आन्दोलन या जनउभार कुछ सफलताओं और अराजकता के साथ अन्ततः ज़्यादा से ज़्यादा किसी समझौते या अक्सर असफलता पर ही ख़त्म होता है। पिछले एक दशक में ही ऐसे तमाम जनान्दोलन दुनिया भर में देखने में आये हैं, जो स्वत:स्फूर्त थे, अपनी ताक़त से शासक वर्ग को भयभीत कर रहे थे, लेकिन किसी स्पष्ट राजनीतिक लक्ष्य, कार्यक्रम और नेतृत्व के अभाव में अन्त में वे दिशाहीन हो गये, जनता अन्ततः थककर वापस लौट गयी और शासक वर्गों को अपने आपको और अपनी सत्ता को वापस सम्भाल लेने का अवसर मिल गया। ऐसा ही हमें श्रीलंका, बांग्लादेश और नेपाल में अचानक से हुए जनउभार में देखने को मिला। यही हमें अरब जनउभार में भी देखने को मिला था। इसलिए जो एक नकारात्मक सबक हमें इन उदाहरणों से मिलता है, वह यह कि हमें अपना ऐसा स्वतन्त्र राजनीतिक नेतृत्व और संगठन विकसित करना चाहिए जो पूँजीपति वर्ग के सभी चुनावबाज़ दलों के असर से मुक्त हो, पूर्ण रूप से मज़दूर वर्ग की नुमाइन्दगी करता हो, उसकी राजनीति और विचारधारा मज़दूर वर्ग की राजनीति और विचारधारा हो। ऐसे क्रान्तिकारी सर्वहारा संगठन के बिना जनसमुदाय

कभी भी अपने जनान्दोलनों के उद्देश्यों की पूर्ति तक नहीं पहुँच सकते।

दूसरी बात हमें आज यह समझनी होगी कि फ़ासीवादी मोदी सरकार आज मेहनतकशों पर चौतरफ़ा हमला बोल चुकी है। फ़ासीवादी मोदी सरकार हर तरह के विरोध को कुचलने के लिए तमाम हथकण्डे अपना रही है। जिस तरह से देशभर के विश्वविद्यालयों में छात्रों के जनवादी मंच छात्रसंघ को एक प्रक्रिया में ख़त्म कर दिया गया है और जहाँ पर है भी वहाँ प्रभावहीन बना दिया गया है; ठीक उसी तरह से मोदी सरकार ने हम मज़दूरों को आधुनिक गुलाम बनाने के लिए चार लेबर कोड लागू कर दिये हैं। इन लेबर कोड के ज़रिये पूँजीपतियों को हम मज़दूरो को लूटने की खुली छुट मिल जायेगी। हमारे यूनियन बनाने और हड़ताल करने तक के जनवादी अधिकारों को हमसे छिना जा रहा है। सच्चाई यह है कि फ़ासीवादी शासन के तहत समाज के हर शोषित-दमित-उत्पीड़ित तबके के विरोध को कुचलने के लिए खुला डंडातंत्र लागू कर दिया जाता है ताकि पूँजी के हितों को, बिना किसी प्रतिरोध के, साधा जा सके। इसलिए हम मज़दूर साथियों को मज़दूर-कर्मचारी-छात्र एकता कायम करने लिए कदम बढ़ाना चाहिए क्योंकि आज इसी फ़ौलादी एकजुटता के दम पर हम फ़ासीवादी हमलों का मुक़ाबला कर सकते हैं।

साथ ही हमें फ़ासीवाद की परिघटना की भी वैज्ञानिक समझदारी हासिल करनी होगी क्योंकि दुश्मन को समझे बग़ैर दुश्मन को हराया नहीं जा सकता है। हमें यह समझना होगा कि फ़ासीवाद टुटपूँजिया वर्ग का तृणमूल स्तर का धुर प्रतिक्रियावादी संगठित सामाजिक आन्दोलन होता है जो एक काडर आधारित संगठन द्वारा संचालित होता है और फ़ासीवादी विचारधारा पर खड़ा होता है। कुलमिलकर कहें तो फ़ासीवाद आम तौर पर पूँजीपति वर्ग तथा विशेष तौर पर बड़े पूँजीपति वर्ग की सेवा करता है और अपने इस ऐतिहासिक प्रकार्य को पूरा करने के लिए ही हर प्रकार के राजनीतिक प्रतिरोध को कुचलता है। इसलिए यह बात समझना भी उतना ही ज़रूरी है कि फ़ासीवाद का मुक़ाबला कांग्रेस, सपा, टीएमसी, आम आदमी पार्टी, राजद सरीखी पूँजीवादी पार्टियों का पिछलग्गू बनकर नहीं किया जा सकता है जैसा कि आज भाकपा, माकपा, भाकपा-माले(लिबरेशन) जैसी नामधारी कम्युनिस्ट पार्टियाँ कर रहीं हैं। फ़ासीवाद को सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व में आम मेहनतकश जनता की फ़ौलादी एकता से संचालित तृणमूल स्तर के जुझारू जन आन्दोलन के दम पर ही परास्त किया जा सकता है।

इस आन्दोलन से एक ज़रूरी सबक यह मिलता है कि स्त्रियों की भागीदारी के बग़ैर कोई भी आन्दोलन मुक्कमल जीत तक पहुँच ही नहीं सकता है। इसी इलाहाबाद विश्वविद्यालय में इसके पहले तमाम आन्दोलन खड़े हुए, छात्रों-नौजवानों का एक बड़ा हुजूम भी सडकों पर उतरा लेकिन उन आन्दोलनों में छात्राओं की भूमिका नगण्य थी। आम तौर पर ऐसे आन्दोलन अक्सर असफलता पर ही समाप्त हुए। इस आन्दोलन में शुरू से ही छात्राओं की भी सक्रिय भूमिका रही। हमारी महिला साथियों ने इस आन्दोलन को शानदार तरीके से संचालित किया और इस वजह से भी इस आन्दोलन को जीत हासिल हुई। भारत जैसे पितृसत्तात्मक समाजों में स्त्रियों को सामाजिक-राजनीतिक संघर्षों से दूर रहने की हिदायत दी जाती है। हम मज़दूर साथी भी जाने-अनजाने पितृसत्ता की उत्पीड़नकारी विचारधारा के प्रभाव में होते हैं। हमें यह बात समझनी होगी कि स्त्रियों की गुलामी के केन्द्र में भी वही पूँजीवाद है जो पूँजीवाद मज़दूर वर्ग को गुलामी की दहलीज़ पर धकेल रहा है और उसके भी शोषण-दमन-उत्पीड़न का कारण है। इसलिए स्त्री मुक्ति संघर्ष मज़दूर वर्ग की मुक्ति संघर्ष से अटूट रूप में जुड़ा हुआ है।

एक आख़िरी ज़रूरी सबक यह कि जब भी किसी स्थापित सत्ता के ख़िलाफ़ कोई न्यायपूर्ण आन्दोलन खड़ा होता है तो सत्ता के दलाल और हमारे बीच मौजूद भितरघाती अपने आकाओं की सेवा में सक्रिय हो जाते हैं, जैसा इस आन्दोलन में भी हुआ। पूँजीपति वर्ग या पूँजीवादी सरकार के ख़िलाफ़ कोई जुझारू आन्दोलन शुरू होता है तो शोषक वर्गों द्वारा सबसे पहले आन्दोलन में फूट डालने के हथकण्डे अपनाये जाते हैं। शोषक वर्ग के लिए इस काम में सबसे बड़े सहयोगी बनते हैं हमारे बीच मौजूद भितरघाती और सत्ता के दलाल। इसी तरह मज़दूर आन्दोलन में भी ऐसी तमाम दलाल यूनियनें व संगठन काम कर रहे हैं जो वैसे तो हमारे बीच में बड़े क्रान्तिकारी बनते हैं, लेकिन जैसे ही हमारा कोई जुझारू आन्दोलन खड़ा होता है, तत्काल ही ये संगठन पूँजीपतियों की दलाली करने लगते है, उनसे साँठ-गाँठ करने लगते हैं और हमारे आन्दोलन को कमज़ोर बनाने की कोशिश करने लगते है। इसलिए ज़रूरी है कि हम अपने आन्दोलन को ऐसी दलाल यूनियनों और संगठनों से मुक्त करें और पूँजीपति वर्ग से राजनीतिक रूप से स्वतन्त्र क्रान्तिकारी मज़दूर यूनियनों व संगठनों को क़ायम करें।

मोदी सरकार के चार लेबर कोड क्या हैं और ये मज़दूर-विरोधी क्यों हैं?

● अनन्त

बीते 21 नवम्बर को केन्द्र की फ़ासीवादी मोदी सरकार ने मज़दूर-विरोधी चार श्रम संहिताओं (लेबर कोड) को लागू करने के लिए अधिसूचना जारी की। इनमें से एक संहिता, मज़दूरी संहिता, 2019 में पारित की गयी थी; जबकि अन्य तीन—औद्योगिक सम्बन्ध संहिता, सामाजिक सुरक्षा संहिता, तथा पेशागत सुरक्षा, स्वास्थ्य और कार्यस्थितियों पर संहिता— साल 2020 में संसद के दोनों सदनों में पारित हुई थीं। यह वही कोरोना महामारी का दौर था, जब सरकार द्वारा अनियोजित ढंग से लगाये गये लॉकडाउन के कारण करोड़ों मज़दूर सड़कों पर हज़ारों किलोमीटर पैदल चलने के लिए मजबूर हुए थे। इन संहिताओं के तहत पुराने 29 केन्द्रीय श्रम कानूनों को समाप्त कर उन्हें समाहित करते हुए एक नया ढाँचा तैयार किया गया है। टीवी, अख़बार से लेकर सोशल मीडिया तक सरकार के भोंपू उछल-उछल कर इन संहिताओं के गुणगान गा रहे हैं। सरकार इसे स्वतंत्रता के बाद के सबसे व्यापक और प्रगतिशील "श्रमोन्मुख सुधारों" में से एक बता रही है। हम मज़दूरों के भी एक हिस्से में इस बात को लेकर भ्रम है कि सरकार इन नयी संहिताओं के साथ मज़दूरों का शायद भला कर रही है। इसलिए इन लेबर कोडों की असलियत समझना हम सभी मज़दूरों-कर्मचारियों के लिए बेहद ज़रूरी है तभी हम इनके मज़दूर-विरोधी चरित्र को ठीक से जान पायेंगे और इनके विरुद्ध जुझारू संघर्ष खड़ा कर पायेंगे।

इन लेबर कोडों को लागू करने के पीछे सरकार खोखले तर्क दे रही है कि बीसवीं सदी में लागू किये गये पुराने श्रम क़ानून अब नये ज़माने के अनुरूप नहीं है। कई श्रम क़ानून 1930 के दशक से 1950 के दशक के बीच— यानी स्वतंत्रता-पूर्व और स्वतंत्रता के शुरुआती वर्षों में— बनाये गये थे, जब डिजिटल अर्थव्यवस्था या गिग अर्थव्यवस्था जैसी अवधारणाएँ मौजूद नहीं थीं। आज डिजिटल अर्थव्यवस्था या गिग अर्थव्यवस्था के जमाने में नये श्रम कानूनों की ज़रूरत है। सरकार इस प्रचार में लगी हुई है कि ये बदलाव एक तरफ़ मज़दूरों के लिए बेहतर हैं और दूसरी तरफ़ 'इज़ ऑफ डूइंग बिजनेस' को बढ़ावा देंगे! मतलब श्रम और पूँजी दोनों को फ़ायदा होगा! यह कोरी लफ़्फ़ाज़ी के अलावा और कुछ नहीं है। सच्चाई यह है कि ये चारों कोड पूँजीपतियों, मालिकों, कम्पनियों और प्रबन्धन को मज़दूरों-कर्मचारियों को लूटने की पूरी खुली छूट देते हैं और उनको आधुनिक गुलामों में तब्दील करने के क़ानूनी दस्तावेज़ है। पूँजीवाद के अन्तर्गत मज़दूर वर्ग की असुरक्षित और अरक्षित स्थिति को ये श्रम संहिताएँ और अधिक बढ़ावा देती हैं तथा मज़दूर अपने अधिकारों की रक्षा के लिए संगठित भी न हो पायें, इसका पक्का प्रबन्ध भी मोदी सरकार द्वारा चार लेबर कोड में किया गया है।

मोदी सरकार का दावा है कि इन लेबर कोडों के ज़रिये वह श्रम कानूनों का दायरा विस्तारित कर रही है। यानी जिन श्रमिकों या प्रतिष्ठानों पर पहले श्रम क़ानून लागू नहीं होते थे, अब उन्हें भी इन नयी संहिताओं के दायरे में शामिल किया जायेगा। उदाहरण के लिए गिग वर्कर और प्लेटफ़ॉर्म वर्कर (जैसे स्विगी, उबर, ज़ोमैटो आदि के डेलीवेरी एजेंट) को पहली बार किसी श्रम क़ानून के तहत पहचान दी जायेगी। फिक्स्ड-टर्म रोज़गार, घरेलू कामगार, ठेका श्रमिक आदि को औपचारिक रूप से श्रम संहिताओं के दायरे में लाया जायेगा। कुछ नियमों को छोटे प्रतिष्ठानों (जहाँ कम संख्या में मज़दूर काम करते हैं) पर भी लागू किया जायेगा। यह भी कोरी जुमलेबाज़ी के अलावा कुछ नहीं है। सच्चाई यह है कि चारों श्रम संहिताएँ एक बहुत बड़ी श्रमिक आबादी को क़ानूनी दायरे से बाहर धकेल रही हैं, जो पहले श्रम क़ानूनों के अन्तर्गत आते थे क्योंकि नये कोडों के अन्तर्गत क़ानूनी सुरक्षा के तहत आने की सीमा को ही मनमाने ढंग से व्याख्यायित किया गया है। साथ ही, 'फ़िक्सड टर्म इम्प्लोयमेंट' के ज़रिये स्थायी रोज़गार के अधिकार को ही छीन लिया गया है। अब कम्पनी मज़दूरों को दिन, महीने के लिए भी क़ानूनी तौर पर रख सकती है यानी ठेका प्रथा को पूरी तरह क़ानूनी बना दिया गया है।

दरअसल, आधुनिकीकरण, तर्कशीलता तथा दायरे के विस्तार की लफ़्फ़ाज़ी के नीचे ये नयी संहिताएँ व्यवस्थित रूप से मज़दूर वर्ग पर हमला कर रही हैं। नये क़ानून के नाम पर जो वास्तविक अधिकार वैधानिक तौर पर मज़दूरों को प्राप्त थे, उनका मर्म ख़त्म कर, उन्हें केवल झुनझुने में तब्दील करने का काम किया जा रहा है। ये नयी संहिताएँ श्रमिक सुरक्षा को कमज़ोर करती हैं, असुरक्षा को बढ़ाती हैं और श्रम कानूनों के नाम पर जो सीमित क़ानूनी ताक़त मज़दूरों के पास थी, उन्हें अब खुले तौर पर मालिकों के पक्ष में स्थानांतरित करती हैं। सच तो यह है कि श्रम कानूनों को तमाम तरह के संशोधनों के साथ पहले की सरकारें भी कमज़ोर करती रही हैं। व्यवहार में वे आम तौर पर कागज़ी ही साबित होते रहे हैं। यह भी सच है की श्रम क़ानूनों के ठोस अनुपालन की कोई व्यवस्था नहीं रही है। श्रम विभाग आम तौर पर मालिकों के पक्ष में ही काम करता रहा है। हालाँकि मज़दूर आन्दोलन का इतिहास बताता है कि जब मज़दूर संगठित होकर संघर्ष करते थे और क़ानूनी लड़ाइयाँ लड़ते थे तो इन क़ानूनों को एक हद तक अपने पक्ष में लागू करवाने में सफलता भी हासिल कर लेते थे। लेकिन इन नयी संहिताओं के साथ अब मज़दूरों-कर्मचारियों के लिए स्थिति बेहद दुरूह हो जायेगी। व्यवहार में मज़दूरों से जो पहले छीना जा रहा था, अब मोदी सरकार उसे ही वैधानिक जामा पहनाकर नया विधान रच रही है और मालिकों को शोषण करने की नंगी क़ानूनी आज़ादी दे रही है। दरअसल देश के पूँजीपति वर्ग ने 2014 में इसी काम के लिए भाजपा और नरेंद्र मोदी को सत्ता तक पहुँचाया था और उनके चुनाव प्रचार पर अरबों रुपये उड़ाये थे।

हमें यह बात भी अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि मज़दूर वर्ग को श्रम क़ानूनों के तौर पर जो अधिकार मिले थे, वे इसलिए नहीं मिले थे कि सरकारें मज़दूरों की हितैषी थीं या खैरात में उन्हें ये हक़ दे रही थीं। बल्कि इसके पीछे कारण यह था कि 19वीं और 20वीं सदी में देश तथा दुनिया भर के मज़दूरों ने मालिकों और सरकारों के ख़िलाफ़ शानदार संघर्ष लड़कर, सड़कों पर अपना खून बहाकर, वे हक़ अधिकार हासिल किये थे और सरकारों को क़ानून बनाने के लिए मजबूर किया था। दूसरा, पूँजीवादी राज्य अगर श्रम क़ानूनों के रूप में ये न्यूनतम अधिकार भी नहीं देता, तो मज़दूर वर्ग का गुस्सा विद्रोहों की शक्ल भी अख़्तियार कर सकता था, जिससे पूँजीपति वर्ग हमेशा भयाक्रान्त रहता है। रूस की 1917 की अक्तूबर मज़दूर क्रान्ति का हौवा दुनिया भर के हुक्मरानों को वैसे ही इस दौर में खूब सता रहा था।

मोदी सरकार जब यह कहती है कि पुराने क़ानून नये ज़माने के अनुरूप नहीं है, तो इसका मतलब यह है कि वह आज मेहनत की लूट में किसी भी तरह की कोई अड़चन नहीं चाहती है। पूँजीपति वर्ग द्वारा मुनाफ़ा कमाने की अन्धी हवस में वह कोई वैधानिक बाधा नहीं चाहती है। जब वह कहती है कि वह "ईज़ ऑफ़ डूइंग बिज़नेस" को बढ़ावा देना चाहती है, तो इसका केवल यही अर्थ है कि मज़दूर चूँ-चपड़ किये बिना, गर्दन नीची झुका कर कोल्हू के बैल की तरह काम करते रहें। वह भूल जाये, किसी भी श्रम अधिकार के बारे में, यूनियन बनाने के बारे में, हड़ताल करने के बारे में, यहाँ तक कि श्रम न्यायालय जाकर किसी भी तरह शिक़ायत करने या माँग रखने के बारे में! श्रम न्यायालय, जो पहले से ही पक्षपात और भ्रष्टाचार के लिए कुख्यात थे, जो आम तौर पर मालिकों के पक्ष में ही तुरतुरी बजाते थे, अब लगभग निष्प्रभावी कर दिये गये हैं। पहले उनके पास नाम के लिए ही सही कुछ कार्रवाई करने की गुंजाइश थी और जब मज़दूर अपनी यूनियनों के नेतृत्व में संगठित होकर दबाव बनाते थे, तो उन्हें श्रम कानून का पालन करने के लिए मजबूर भी कर सकते थे, लेकिन अब नयी संहिताओं के द्वारा उस गुंजाइश को भी वैधानिक तौर पर ख़त्म किया जा रहा है।

आज जब हमारे देश में फ़ासीवादी ताक़तें सत्ता पर काबिज़ हैं, दुनिया भर के कई देशों में भी धुर-दक्षिणपंथी पार्टियाँ आज सत्ता के शीर्ष पर हैं और पूँजीवादी व्यवस्था अभूतपूर्व संकट का शिकार है, तब ऐसी परिस्थिति में मालिक वर्ग श्रमिकों के आख़िरी हक़-हुकूक भी छीन लेना चाहता है, मुनाफ़े बढ़ाने के लिए बेलगाम तरीक़े से मज़दूरों को निचोड़ डालना चाहता है और इसलिए इस रास्ते में किसी भी तरह का वैधानिक व्यवधान नहीं चाहता है। ये श्रम संहिताएँ पूँजी की इसी ज़रूरत का दस्तावेज़ हैं।

आइए एक-एक करके इन श्रम संहिताओं से परिचित होते हैं और देखते हैं कि ये किस प्रकार मज़दूरों के हितों और अधिकारों पर हमले कर रही हैं।

मज़दूरी पर संहिता, 2019 (The Code on Wages, 2019)

सबसे पहले मज़दूरी संहिता, 2019 पर बात करते हैं। इसके अन्तर्गत चार पुराने केन्द्रीय क़ानूनों—वेतन भुगतान अधिनियम 1936, न्यूनतम वेतन अधिनियम 1948, बोनस भुगतान अधिनियम 1965 और समान पारिश्रमिक अधिनियम 1976—को समाप्त कर समाहित कर लिया गया है।

इस संहिता के अन्तर्गत मज़दूरी की परिभाषा को केवल 'बेसिक पे' यानी आधार वेतन तक सीमित रखा गया है। किसी भी प्रकार के भत्तों को इस परिभाषा में शामिल नहीं किया गया है। इसके साथ ही सबसे महत्वपूर्ण बदलाव न्यूनतम मज़दूरी तय करने के मानकों में किया गया है। पुराने न्यूनतम वेतन अधिनियम के तहत न्यूनतम मज़दूरी 1957 के 15वें भारतीय श्रम सम्मेलन और सुप्रीम कोर्ट के रेप्टाकोस ब्रेट्ट एण्ड कं. बनाम मज़दूर केस में निर्धारित मानदण्डों के अनुसार तय किया जाता था। यह, पहला, भोजन की ज़रूरत, दूसरा, कपड़ों की बुनियादी ज़रूरत, तीसरा, आवास की ज़रूरत, चौथा, ईंधन, रोशनी और अन्य घरेलू आवश्यकताओं, पाँचवाँ, बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य, मनोरंजन, बुढ़ापे के इन्तज़ाम और आकस्मिक ज़रूरतों को आधार बना कर न्यूनतम मज़दूरी तय करता था। केन्द्र और राज्य सरकारें तो वैसे भी इन निर्देशों का पालन नहीं करती थीं, लेकिन अब मोदी सरकार ने उसी को क़ानूनी जामा पहना दिया है। यहाँ तक कि सरकार द्वारा नियुक्त की गयी विशेषज्ञ समिति ने भी न्यूनतम मज़दूरी तय करने के लिए इन दिशा-निर्देशों के साथ छेड़छाड़ करते हुए कैलोरी की ज़रूरी खपत को 2700 की बजाय 2400 पर रखा है और तमाम बुनियादी चीज़ों की लागत भी 2012 की क़ीमतों के आधार पर तय की है। यानी इस नयी श्रम संहिता में न्यूनतम मज़दूरी तय करने के इन पुराने मानदण्डों को शामिल नहीं किया गया है। कुलमिलाकर कहें तो अब मज़दूरी निर्धारण सरकार की मर्ज़ी के मुताबिक होगा। या यूँ कहें कि कारख़ानेदारों, मालिकों, और नौकरशाहों की मर्ज़ी से होगा।

मज़दूरी कोड में न्यूनतम मज़दूरी की दर समयानुसार (टाइम वर्क) और मात्रानुसार (पीस वर्क) तय होगी और वेतनकाल घण्टे, दिन या महीने के हिसाब से हो सकता है। यह नियम सुप्रीम कोर्ट के न्यूनतम मज़दूरी सम्बन्धी फ़ैसलों की धज्जियाँ उड़ाता है। सुप्रीम कोर्ट ने यह कई बार दोहराया है कि न्यूनतम मज़दूरी व्यक्ति की सभी आवश्यकताओं के हिसाब से तय होनी चाहिए, न केवल मज़दूरों की साधारण शारीरिक ज़रूरतों व उत्पादन के आधार पर। सुप्रीम कोर्ट के अनुसार न्यूनतम मज़दूरी तय करते समय आहार-पोषण, पहनने-रहने, इलाज का ख़र्च, पारिवारिक ख़र्च, शिक्षा, ईंधन, त्योहारों, और समारोहों के ख़र्च, बुढ़ापे और अन्य ख़र्चों का ध्यान रखा जाना चाहिए। मगर इसे कोड में दरकिनार कर दिया गया है।

राष्ट्रीय फ़्लोर-लेवल न्यूनतम मज़दूरी (NFLMW)

नयी संहिता में पहली बार क़ानूनी ढाँचे के तहत 'राष्ट्रीय फ़्लोर स्तर न्यूनतम मज़दूरी' (NFLMW) की अवधारणा प्रस्तुत की गयी है, जिसे केन्द्र सरकार तय करेगी। इसके तहत यह प्रावधान है कि कोई भी वेतन NFLMW से नीचे निर्धारित नहीं किया जा सकता। लेकिन इसमें सबसे हास्यास्पद बात यह है कि वर्तमान में भारत सरकार द्वारा तय की गयी तल-स्तरीय मज़दूरी मात्र 178 रुपये प्रतिदिन है! यानी, इस न्यूनतम मज़दूरी के हिसाब से महीने में 26 दिन काम करने वाले की मासिक आमदनी होगी महज़ 4,628 रुपये! यह राशि ख़ुद इसी सरकार की विशेषज्ञ समिति द्वारा सुझायी गयी 9,750 रुपये से 11,622 रुपये की न्यूनतम मासिक आमदनी से बेहद कम है, और आर्थिक सर्वेक्षण 2017 में सुझाये गये 18,000 रुपये के मासिक वेतन का एक-चौथाई मात्र है। सातवें वेतन आयोग ने भी सरकारी कर्मचारियों के लिए न्यूनतम मूल वेतन 18,000 रुपये ही तय किया है। लगभग सभी राज्य सरकारों द्वारा तय न्यूनतम मज़दूरी इस तल-स्तरीय मज़दूरी से कहीं अधिक है। अब नयी मज़दूरी संहिता की रोशनी में वे न्यूनतम वेतन बढ़ाने के लिए बाध्य नहीं होंगे, उल्टे वे इसे घटा सकते हैं, और ऐसा करना नयी संहिता के अनुरूप ही होगा।

(पेज 17 पर जारी)

मोदी सरकार के चार लेबर कोड क्या हैं और ये मज़दूर-विरोधी क्यों हैं?

(पेज 16 से आगे)

उदाहरण के लिए दिल्ली में कुशल मज़दूर का एक दिन का न्यूनतम वेतन 804 रुपये है और बिहार में 500 रुपये है, तो मज़दूरी कोड के अनुसार दिल्ली का न्यूनतम वेतन घटाया जा सकता है। नयी संहिता के तहत अब न्यूनतम मज़दूरी सलाहकार बोर्डों की सिफ़ारिशें—ये त्रिपक्षीय निकाय होते हैं, जिनमें सरकार, नियोक्ता और मज़दूरों के प्रतिनिधि शामिल होते हैं—सरकार पर बाध्यकारी नहीं होंगी। न्यूनतम मज़दूरी तय करने के किसी परिभाषित पैमाने की अनुपस्थिति में NFLMW को कार्यपालिका मनमाने ढंग से तय कर सकती है, जिसके कारण न्यूनतम वेतन को बढ़ाना बेहद कठिन हो जायेगा।

पुराने न्यूनतम वेतन अधिनियम के तहत, किसी भी मज़दूर को दिया जाने वाला वेतन न्यूनतम वेतन से कम नहीं हो सकता था; यदि ऐसा किया जाता, तो उसे जबरिया श्रम (forced labour) माना जाता और यह एक फ़ौजदारी अपराध होता, जिसकी सज़ा जेल तक हो सकती थी। इसके उलट, नयी संहिताएँ न्यूनतम वेतन न देने की आपराधिक जवाबदेही समाप्त कर देती हैं। साथ ही अब सरकार द्वारा निरीक्षण नहीं होगा, बल्कि नियोक्ताओं द्वारा स्वयं प्रमाणन किया जायेगा कि वे क़ानूनी दायित्वों का पालन कर रहे हैं! नतीजतन, एक तरफ़ बँधुआ मज़दूरी का रास्ता खुलेगा और दूसरी तरफ़ न्यूनतम मज़दूरी देने की बाध्यता को सुनिश्चित करने का कोई तन्त्र नहीं रहेगा। यानी अब मज़दूरों को न्यूनतम वेतन के नीचे बेगार खटाना वैधानिक तौर पर मुमकिन होगा। आम मज़दूर अपने जीवन के अनुभव से जानता है कि ज़्यादातर कल-कारख़ानों में मज़दूरों को न्यूनतम वेतन से कम पर काम कराया जाता है। एक आँकड़े के मुताबिक वर्तमान में लगभग 45 प्रतिशत मज़दूरों को निर्धारित न्यूनतम मज़दूरी से कम मज़दूरी मिलती है। अब उनकी संख्या में बेतहाशा बढ़ोत्तरी होगी।

इसके अतिरिक्त, लगभग 80 लाख मज़दूर—जिनमें अधिकांश महिलाएँ हैं—जो भारत सरकार की विभिन्न योजनाओं को ज़मीनी स्तर पर लागू करने के लिए अलग-अलग विभागों में कार्यरत हैं, जैसे आंगनवाड़ी कार्यकर्ता और सहायिकाएँ, आशा कार्यकर्ता, मिड-डे मील कर्मी, शिक्षामित्र आदि—उन्हें मज़दूर के रूप में मान्यता ही नहीं दी गयी है। उन्हें भी मज़दूरी संहिता के दायरे में शामिल नहीं किया जायेगा। इसके अलावा ग्रामीण मज़दूरों, घरेलू कामगारों, मनरेगा मज़दूरों आदि को भी इस संहिता में कोई जगह नहीं दी गयी है।

इसके अलावा, ओवरटाईम की स्पष्ट व्याख्या इस संहिता में नहीं की गयी है। ओवरटाइम की परिभाषा को ख़त्म करके "पूरक कार्य" और "अनिरन्तर काम" की लच्छेदार भाषा के बहाने ओवरटाइम के लिए मिलने वाली अतिरिक्त मज़दूरी को ख़त्म करने की चाल चली गयी है। सेक्शन 14 में कहा गया है कि सामान्य दिन के काम के घण्टों से अधिक काम करना ओवरटाइम कहलायेगा, जबकि सामान्य दिन के काम के घण्टे सरकार के नोटिफ़िशन के ज़रिये तय होंगे। अगर सरकार सामान्य दिन में 10 घण्टे काम का नोटिफ़िकेशन जारी करती है, तो 12 घण्टे के बाद किया जाने वाला काम ओवरटाइम कहलायेगा। फ़ैक्ट्री एक्ट में 8 घण्टे के बाद क़िया जाने वाले काम को ओवरटाइम कहा गया था। इसके ज़रिये कम्पनियों को छूट दी गयी है कि 8 घण्टे की तीन शिफ़्ट के बजाय 12 घण्टे की शिफ़्ट में मज़दूरों से काम करवा सकती है। कर्नाटक व कई राज्यों में सरकार ने 8 के बजाय 12 घण्टे काम के नियम को लागू भी कर दिया है। फ़ैक्ट्री एक्ट के तहत बिना ब्रेक दिये 5 घण्टे से अधिक मज़दूरों को काम नहीं कराया जा सकता था। मज़दूरी संहिता में इसपर कोई बात ही नहीं की गयी है। यानी अब कम्पनी बिना ब्रेक दिये कितने भी घण्टे काम करवा सकती है।

मज़दूरी संहिता में लेबर इंस्पेक्टर की जगह इंस्पेक्टर-कम-फैसिलिटेटर नियुक्त किया जायेगा, जिसका काम कम्पनियों पर कार्रवाई करने के बजाय उन्हें सुझाव देना होगा! साथ ही कम्पनियों का निरीक्षण ऑनलाइन किया जा सकेगा जिससे कारख़ाने में अचानक किये जाने वाले निरीक्षण की प्रथा ख़त्म हो जायेगी। कम्पनी में निरीक्षण करने के लिए पहले नियोक्ता को सूचित करना होगा! साथ ही क़ानून का उल्लंघन करने पर फैसिलिटेटर कम्पनी पर कार्रवाई नहीं कर सकता, बल्कि 'ग़लती' सुधारने का मौक़ा दिया जायेगा! मज़दूरी संहिता में कम्पनियाँ श्रम क़ानून लागू कर रही हैं, यह बताते हुए ख़ुद को सेल्फ सर्टिफिकेट भी दे सकती है। साथ ही कम्पनी का ऑडिट थर्ड पार्टी द्वारा करवाया जा सकता है। मज़दूरों द्वारा कम्पनी के ख़िलाफ़ शिकायत करना भी मुश्किल कर दिया गया है। अगर मज़दूरों को शिकायत करनी हो, तो वह ऑनलाइन समाधान पोर्टल पर करनी होगी।

इसके अलावा मज़दूरी संहिता में बोनस के भुगतान को भी लचीला बना दिया गया है। 1965 के बोनस भुगतान क़ानून ने नयी कम्पनियों को बोनस न देने की छूट दी थी, लेकिन वर्तमान कोड में 'नयी कम्पनी' किसे कहा जा सकता है, इसे अस्पष्ट बनाकर लगभग सभी कम्पनियों को बोनस देने से छुटकारा दिलाने की योजना है। इस कोड में कम्पनियों की अनुमति के बिना उनकी बैलेंस शीट उजागर करने पर सरकारी अधिकारियों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है। तर्क यह दिया गया है कि "कम्पनियों पर विश्वास करना चाहिए!" यानी अब अगर कम्पनी कहेगी कि हमें घाटा हो रहा है, इसलिए हम मज़दूरों-कर्मचारियों को बोनस नहीं देंगे, तो सरकार इस पर विश्वास कर लेगी और बोनस माँगने वाले मज़दूरों को फटकार लगायेगी!

औद्योगिक सम्बन्ध संहिता, 2020 (The Industrial Relations Code, 2020)

सरकार तीन पुराने श्रम क़ानूनों – (the Industrial Disputes Act, 1947, the Trade Unions Act, 1926 अँड the Industrial Employment (Standing Orders) Act, 1946) औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947, ट्रेड यूनियन अधिनियम 1926 और औद्योगिक रोज़गार अधिनियम 1946 को हटाकर उनकी जगह औद्योगिक सम्बन्ध श्रम संहिता लेकर आयी है। नरेन्द्र मोदी का कहना है कि औद्योगिक विवाद सही शब्द नहीं है क्योंकि मज़दूरों और पूँजीपतियों के बीच तो कोई विवाद वास्तव में है ही नहीं! उनके बीच दोस्ताना सम्बन्ध है जहाँ पूँजीपति मज़दूरों के अभिभावक के समान हैं और उनकी हर फ़िक्र को अपना समझते हैं! इसी से साफ़ है कि अपने पूँजीपति-आकाओं को ख़ुश करने में प्रधानमंत्री कितने तल्लीन हैं!!

औद्योगिक सम्बन्ध संहिता का बड़ा हमला पक्के रोज़गार के अधिकार पर है। यह कोड वैसे तो कहता है कि निश्चित अवधि के कर्मचारियों (फ़िक्स्ड टर्म एम्प्लॉयी) को वेतन, लाभ और कार्य-स्थितियों के मामलों में स्थायी कर्मचारियों के तर्ज़ पर समानता दी जायेगी। सामाजिक सुरक्षा संहिता में भी निश्चित अवधि के कर्मचारियों को ईपीएफ़, ईएसआई, ग्रेच्युटी आदि जैसे लाभ देने की बात की गयी है। लेकिन असल झोल यह है कि अब सरकार स्थायी रोज़गार को ही समाप्त कर रही है और उसके स्थान पर अल्पकालिक अनुबंधों वाले निश्चित अवधि के रोज़गार को स्थायी कर रही है। इस बात पर कोई सीमा नहीं है कि किसी मज़दूर को कितनी बार निश्चित अवधि के अनुबंध पर रखा जा सकता है। सरल शब्दों में कहें तो, नयी संहिता स्थायी और मूल (पेरिनियल और कोर) कामों में "स्थायी अस्थायित्व" को वैध बना देती है तथा स्थिर रोज़गार को नष्ट करती है।

इस संहिता का दूसरा बड़ा हमला मज़दूरों की रोज़गार सुरक्षा पर है। अब मालिकों द्वारा बिना किसी डर के मज़दूरों की छँटनी, छुट्टी, निष्कासन करना, तालाबन्दी करना आसान हो गया है। पुराना औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 मज़दूरों को छँटनी, बन्दी और तालाबन्दी से सुरक्षा प्रदान करता था, उसके तहत 100 श्रमिकों से अधिक के कारख़ाने को बन्द करने से पहले सरकारी अनुमति की आवश्यकता थी। लेकिन अब नये नियमों के मुताबिक 300 तक मज़दूरों वाले कारख़ानों में मालिक बिना सरकारी अनुमति के छँटनी कर सकते हैं। परिणामस्वरूप 100 से 300 मज़दूरों वाले मध्यम आकार के प्रतिष्ठानों में कार्यरत मज़दूरों की बड़ी संख्या को कभी भी काम से निकाला जा सकता है। 100 या 100 से कम मज़दूरों वाले प्रतिष्ठान में कार्यरत श्रमिक आबादी तो पहले भी ऐसी किसी भी क़ानूनी सुरक्षा के दायरे से बाहर थी। लेकिन अब इसका असर उद्योग के बहुत बड़े हिस्से—लगभग 87 प्रतिशत से अधिक—पर पड़ेगा। इसके अलावा सरकार जब चाहे इस सीमा को बढ़ा सकती है और इसके लिए कोड की धारा 77 (1) में प्रावधान किया गया है।

इसके साथ ही यह बड़े प्रतिष्ठानों को 300 से कम मजदूरों वाली छोटी इकाइयों में तोड़ने के लिए एक बड़ा प्रलोभन होगा और इस तरह यह सुनिश्चित करेगा कि उनमें कार्यरत मज़दूरों को नौकरी की सुरक्षा नहीं होगी और वे रोज़गार की कठोर शर्तों को स्वीकार करने के लिए मजबूर होंगे। पहले छँटनी के बाद, जब भी पुनः रिक्तियाँ पैदा होती तब छँटनी किये गये मज़दूरों को पुनर्नियोजन में प्राथमिकता का अधिकार था। इसके लिये कोई समय सीमा नहीं थी (पुरानी धारा 25H)। नये कोड की धारा 72 में, इस अधिकार को छँटनी की तारीख़ से केवल एक वर्ष तक सीमित कर दिया गया है। बड़े पैमाने पर छँटनी के बाद से एक वर्ष बीत जाने के बाद, नियोक्ता छँटनी किये गये मज़दूरों को पुनः काम पर रखने के किसी भी दायित्व से मुक्त हो जाता है। यह नियोक्ताओं को आसानी से उच्च वेतन वाले मज़दूरों से छुटकारा पाने और बाद में उनके स्थान पर नये कम वेतन वाले मज़दूरों को नौकरी पर रखने की अनुमति देगा।

कुलमिलाकर इसका अर्थ यह निकलता है कि मालिकों व नियोक्ताओं के लिए मज़दूरों को "हायर एण्ड फ़ायर" करना वैधानिक तौर पर आसान बना दिया गया है। वे अब बिना किसी सरकारी निगरानी के, बिना कारण बताये, मनमानी बर्ख़ास्तगी के लिए किसी जवाबदेही या दण्ड का सामना किये बिना, श्रमिकों को मनचाहे ढंग से नौकरी से निकाल सकते हैं। इसके परिणामस्वरूप 90 प्रतिशत से अधिक श्रमिक किसी भी प्रकार की सुरक्षा से वंचित हो जायेंगे।

इस संहिता का तीसरा हमला यूनियन बनाने के अधिकार पर है। यूनियन पंजीकृत कराना पहले ही किसी टेढ़ी खीर से कम नहीं था, अब इसकी प्रक्रिया को और भी जटिल तथा लगभग असम्भव बना दिया गया है। नये प्रावधान के मुताबिक किसी ट्रेड यूनियन के पंजीकरण के लिए "औद्योगिक प्रतिष्ठान या उससे संबद्ध उद्योग" में कार्यरत श्रमिकों में से कम-से-कम 10 प्रतिशत या 100 श्रमिक — जो भी कम हो — आवश्यक होंगे, और यही अनुपात हर समय उसके सदस्यों के रूप में बना रहना चाहिए। यह न्यूनतम अनुपात केवल पंजीकरण के समय ही नहीं, बल्कि हर समय बनाये रखना अनिवार्य है। यदि यह शर्त पूरी नहीं होती है, तो यूनियन का पंजीकरण रद्द किया जा सकता है। सच तो यह है कि ट्रेड यूनियन अधिनियम, 1926 के तहत, पहले केवल 7 सदस्यों के साथ यूनियन का पंजीकरण हो सकता था, लेकिन 2001 में वाजपेयी सरकार ने इसमें एक बड़ा मज़दूर-विरोधी संशोधन करते हुए पंजीकरण के लिए कम-से-कम 10 प्रतिशत या 100 श्रमिक जो भी कम हो, के प्रावधान को शर्त बना दिया था। इसके अलावा, अब नये कोड के तहत यदि यूनियन का पंजीकरण हो भी जाये तो भी उससे मान्यताप्राप्त यूनियन बनने के लिए 30 प्रतिशत मज़दूरों को अपना सदस्य दिखाना होगा। यानी 10 प्रतिशत या 100 श्रमिक वाले पुराने प्रावधान को भी वस्तुतः अब 30 प्रतिशत सदस्यता वाला प्रावधान बना दिया है क्योंकि इतनी संख्या दिखाये बगैर यूनियन को मान्यता ही नहीं मिलेगी और वह मालिकों और प्रबन्धन के समक्ष किसी भी सामूहिक मोलभाव की प्रक्रिया में शामिल हो ही नहीं पायेगी।

इसके साथ ही ट्रेड यूनियन के पंजीकरण में पंजीकरण अधिकारी (रजिस्ट्रार) की भूमिका बढ़ा दी गयी है। उसे किसी ट्रेड यूनियन का पंजीकरण देने, उससे इन्कार करने या यहाँ तक कि उसका पंजीकरण रद्द करने तक के मनमाने अधिकार दे दिये गये हैं। ट्रेड यूनियनों की सदस्यता का सत्यापन उसके द्वारा किया जायेगा। इसका अर्थ

(पेज 18 पर जारी)

मोदी सरकार के चार लेबर कोड क्या हैं और ये मज़दूर-विरोधी क्यों हैं?

(पेज 17 से आगे)

यह है कि रजिस्ट्रार, यूनियन में शामिल हुए श्रमिकों की रोज़गार स्थिति की पुष्टि नियोक्ता से करेगा। यानी कारखाना प्रबन्धन के सामने यह बात गोपनीय नहीं रहेगी कि यूनियन बनाने की गतिविधि में कौन-कौन से श्रमिक शामिल हैं। खुद रजिस्ट्रार मालिकान व प्रबन्धन के साथ ऐसे श्रमिकों की जानकारी साझा करेगा! ज़ाहिरा तौर पर, इसके बाद यूनियन पंजीकरण की कार्रवाई में शामिल श्रमिकों को डराने-धमकाने या काम से निकालने में प्रबन्धन ज़रा भी देर नहीं करेगा।

सत्यापन के उद्देश्य से रजिस्ट्रार, यूनियन पदाधिकारियों और सदस्यों के सम्बन्ध में क़ानून में निर्धारित दस्तावेज़ों के अतिरिक्त अन्य दस्तावेज़ भी माँग सकता है। इस सत्यापन प्रक्रिया को पूरा करने के लिए रजिस्ट्रार के लिए कोई समय-सीमा निर्धारित नहीं की गयी है और न ही विलम्ब की स्थिति में यूनियन के स्वतः पंजीकरण का कोई प्रावधान है, जैसा कि कारख़ाने के पंजीकरण के लिए कर दिया गया है जहाँ एक निश्चित अवधि में यदि रजिस्ट्रार कारखाने का पंजीकरण नहीं करता है तो पंजीकरण स्वतः हो जाएगा! पूँजी के प्रति मोदी सरकार की यह भक्ति और निष्ठा देखते ही बनती है! परिणामस्वरूप, श्रमिकों को अपनी यूनियन के पंजीकरण के लिए वर्षों तक प्रतीक्षा करनी पड़ सकती है। इसके अलावा, ऐसे श्रमिक जो यूनियन के पूर्णकालिक कार्यकर्ता तथा यूनियन पदाधिकारी हो सकते हैं, उनकी संख्या घटा दी गयी है।

ट्रेड यूनियन अधिनियम, 1926 के तहत किसी एक औद्योगिक प्रतिष्ठान में एक से अधिक यूनियनें अस्तित्व में रह सकती थीं। प्रबन्धन को हर यूनियन की बात सुननी होती थी, उनके साथ समझौते की टेबल पर बैठना होता था। इसके विपरीत, औद्योगिक सम्बन्ध संहिता, 2020 के तहत यदि किसी औद्योगिक प्रतिष्ठान में केवल एक पंजीकृत यूनियन मौजूद है, तब भी इसे एकमात्र वार्ता यूनियन के रूप में तभी मान्यता दी जायेगी यदि उसके पास मज़दूरों की कम से कम 30 प्रतिशत सदस्यता हो। यदि किसी प्रतिष्ठान में एक से अधिक पंजीकृत यूनियन है, तो जिस ट्रेड यूनियन के पास कुल श्रमिकों में से कम-से-कम 51 प्रतिशत सदस्य होंगे (जिसे 2019 के विधेयक में प्रस्तावित 75 प्रतिशत से घटाया गया है), वही एकमात्र वार्ताकार यूनियन (नेगोशिएटिंग यूनियन) मानी जायेगी। यानी प्रबन्धन केवल और केवल उसी से बात करेगा जो यूनियन यह शर्त पूरी करेगी। यदि किसी भी यूनियन के पास 51 प्रतिशत सदस्यता नहीं है मतलब अगर कोई भी यूनियन इस मापदण्ड पर खरी न उतरती हो तब फिर उस सूरत में एक वार्ताकार परिषद (नेगोशिएटिंग काउंसिल) गठित की जायेगी जिसमें सिर्फ़ उन्हीं यूनियनों के प्रतिनिधि बैठेंगे जिनके पास संस्थान के कम से कम 20 प्रतिशत मज़दूरों की सदस्यता हो। ग़ौरतलब है कि पहले सदस्यता की यह सीमा 10 प्रतिशत मजदूरों की थी। इससे एक तरफ़ छोटी और संघर्षशील यूनियनों को हाशिये पर धकेलने का रास्ता खुलता है तो दूसरी तरफ़ प्रबन्धन अपनी जेबी यूनियनें खड़ी कर किसी भी एक यूनियन को वार्ताकार यूनियन बनने से रोक सकता है। व्यवहार में, अधिकांश प्रतिष्ठानों—विशेषकर बड़े प्रतिष्ठानों—में 51 प्रतिशत सदस्यता हासिल करना लगभग असम्भव है। यानी अगर कहीं ट्रेड यूनियन पंजीकृत हो भी गयी, रजिस्ट्रार ने उसका पंजीकरण रद्द नहीं भी किया, तो भी वह मज़दूरों के पक्ष में मालिकान तथा प्रबन्धन से मोलभाव कर पाने की स्थिति में हो, यह अब और भी मुश्किल हो गया है।

यानी वार्ता परिषद की इस नई प्रणाली के तहत, जिन यूनियनों को मान्यता प्राप्त नहीं है (या नवगठित यूनियन) सभी अधिकारों से वंचित है, भले ही उनके पास यूनियन पंजीकरण के लिए आवश्यक 10 प्रतिशत से अधिक सदस्यता हो। वे प्रतिष्ठान के अन्दर सदस्यता एकत्र नहीं कर सकते हैं या किसी भी ट्रेड यूनियन गतिविधि का संचालन नहीं कर सकते हैं। वे कोई माँग नहीं उठा सकते हैं और न ही हड़ताल का सहारा ले सकते है और कम्पनी को यह क़ानूनी अधिकार होगा कि वह समझौता कार्यवाहियों में भी उनके साथ बातचीत न करे। वे प्रतिष्ठान में श्रम क़ानूनों के उल्लंघन के बारे में श्रग विभाग को कोई शिकायत भी नहीं कर सकेंगे।

बडे प्रतिष्ठानों में जब असंगठित मज़दूर एक यूनियन में संगठित होने लगेंगे, तो प्रबन्धन के लिए यह क़ानूनी रूप से आसान होगा कि वह अपने पक्ष के मज़दूरो को एक और यूनियन बनाने के लिए प्रोत्साहित करे और उसे ही वार्ता यूनियन के रूप में मान्यता दे। एक बार प्रबन्धन के अनुकूल यूनियन को मान्यता दे दी गयी, तो किसी भी नई यूनियन के लिए ख़ुद को स्थापित करना और मान्यता प्राप्त करना बेहद मुश्किल होगा क्योंकि मजदूरों की माँगों पर क़ानूनी रूप से आन्दोलन करने की सीमित सम्भावना है। यह संहिता ऐसे अधिकाँश प्रतिष्ठानों में प्रबन्धन-समर्थक यूनियनों या नाममात्र यूनियनों का होना सुनिश्चित करेगा।

चौथा हमला स्थायी आदेश अधिनियम, 1946 से जुड़े बदलावों के साथ किया गया है। पहले 100 से अधिक श्रमिकों के प्रतिष्ठानों में स्थायी आदेश अधिनियम के तहत सेवा शर्तों को लिखित और स्पष्ट करना अनिवार्य था। अब नये क़ानून में स्थायी आदेश लागू होने की सीमा 100 से बढ़ाकर 300 मज़दूर कर दी गयी है। इससे बड़ी संख्या में मज़दूर अब लिखित सेवा शर्तों के दायरे से बाहर हो जायेंगे। नतीजतन, ठेका, अस्थायी और अनिश्चित रोज़गार को बढ़ावा मिलेगा।

पाँचवाँ महत्वपूर्ण हमला हड़ताल के अधिकार पर किया गया है। हड़ताल मज़दूरों का सामूहिक मोल-भाव करने का हथियार होता है। प्रबन्धन को अपनी माँगो को स्वीकार करने के लिए मजबूर करने के लिये मज़दूरों के पास हडताल पर जाने का अधिकार ही सबसे महत्वपूर्ण और अन्तिम हथियार है। यह संहिता मजदूरों की लगभग हर हड़ताल को अवैध बनाती है। अब व्यवहारिक तौर पर वैध तरीके से कोई भी हड़ताल कर पाना सम्भव नहीं रह जायेगा। हड़ताल करने की शर्तें ऐसी कर दी गयीं हैं कि हड़ताल करना अपराध माना जायेगा, जिसके एवज में जुर्माना से लेकर सज़ा तक हो सकती है। पुराने औद्योगिक विवाद अधिनियम में धारा 22 केवल जन/सार्वजनिक उपयोगी सेवाओं पर लागू होती थी जिनमें हड़ताल से पहले 14 दिन का नोटिस आवश्यक था। धारा 23 के तहत अन्य उद्योगो में किसी नोटिस की आवश्यकता नहीं थी और केवल न्यायालय, न्यायाधिकरण आदि के समक्ष कार्यवाही चलने के दौरान कोई हडताल नहीं करने पर प्रतिबन्ध था। नये कोड में पुरानी धाराओं 22 और 23 को नयी धारा 62 (1) के रूप में मिला दिया गया है और सभी प्रतिष्ठानो पर लागू किया गया है। इसलिए अब किसी भी प्रकार के उद्योग में हड़ताल के लिये 14 दिनों का नोटिस देना होगा। फिर नोटिस मिलने के बाद समझौता अधिकारी समझौता कार्यवाही शुरू करेगा और सुलह (conciliation) की कार्यवाही के दौरान तथा उसके समाप्त होने के सात दिन बाद तक, और औद्योगिक न्यायाधिकरण की कार्यवाही के दौरान तथा उसके समाप्त होने के 60 दिन बाद तक हड़ताल पर प्रतिबंध रहेगा। इसके अलावा, किसी भी समझौते के प्रभावी रहने की अवधि में भी हड़ताल निषिद्ध होगी। वार्ता विफल होने की सूरत में, समझौता अधिकारी विफलता की रिपोर्ट सरकार को भेजेगा जो इसे एक न्यायाधिकरण के पास फ़ैसला करने के लिए भेज देगी और जब तक मामला न्यायाधिकरण में है, कोई हड़ताल नहीं होगी। दूसरी ओर, समझौता कार्यवाही की विफलता के बाद, नये क़ानून के तहत, प्रबन्धन भी मामले को सीधे ट्रिब्यूनल मे ले जा सकता है (धारा 53(6)) और इसलिए भी कोई हड़ताल सम्भव नहीं होगी। वास्तव में हर हड़ताल को ही अब अवैध हड़ताल घोषित किया जा सकता है।

अब इन नियमों की तुलना ज़रा इससे करें। 300 से कम कामगारों वाले किसी प्रतिष्ठान में मालिक अथवा नियोक्ता एक महीने के भीतर तालाबन्दी की घोषणा कर उसे पूरा कर लेंगे, जबकि उस प्रतिष्ठान के श्रमिकों को इस तालाबन्दी के ख़िलाफ़ "क़ानूनी" रूप से हड़ताल करने के लिए दो महीने तक इन्तज़ार करना पड़ेगा! सुलह अथवा न्यायाधिकरण की कार्यवाहियों के दौरान हड़ताल करने पर पाबन्दी लगायी गयी है। व्यवहारतः मालिक अथवा नियोक्ता इन कार्यवाहियों को सालों तक खींच सकते हैं, नतीजतन इस अवधि में श्रमिक किसी भी प्रकार का "वैध" आन्दोलन या हड़ताल नहीं कर पाएँगे।

इसके अलावा, यदि किसी प्रतिष्ठान के 50 प्रतिशत से अधिक श्रमिक सामूहिक रूप से आकस्मिक अवकाश लेते हैं, तो उसे भी हड़ताल माना जायेगा—अर्थात बिना पूर्व सूचना के संगठित अनुपस्थिति तक को अवैध करार दिया जायेगा। कोई भी मज़दूर जो अवैध हड़ताल पर जाता है, कोई भी व्यक्ति जो हड़ताल के लिए वित्तीय सहायता देता है या अन्यथा हड़ताल में मदद करता है, उसे नौकरी से बर्ख़ास्त होने के अलावा बडा ज़ुर्माना लग सकता है या जेल भी जाना पड़ सकता है।

औद्योगिक सम्बन्ध संहिता में, एक महत्वपूर्ण मज़दूर विरोधी परिवर्तन 'उद्योग' की परिभाषा में किया गया है। किसी धर्मार्थ, सामाजिक या परोपकारी सेवा में पूरी तरह या पर्याप्त रूप से लगे संगठनों के स्वामित्व या प्रबन्धन वाले संस्थानों को उद्योग की परिभाषा से बाहर रखा गया है। उदाहरण के लिए, कुछ राज्यों में स्कूलों में मध्याह्न भोजन देने का ठेका समाज सेवा करने वाले धर्मार्थ, परोपकारी संगठनों को दिया गया है। इसलिए इसे एक उद्योग के रूप में नहीं माना जायेगा और इस भोजन को तैयार करने और परोसने के काम में लगे मज़दूरो को उनके अधिकारों से वंचित कर दिया जाएगा। अस्पतालों, स्कूलों, कॉलेजों, मन्दिर के ट्रस्टों, आश्रमों आदि मे कार्यरत मज़दूरों के मामले में भी ऐसा होगा, जिनके स्वामित्व या प्रबन्धन का दावा धर्मार्थ संगठनों द्वारा किया जाता है। यहाँ तक कि बाबा राम देव के कॉर्पोरेट उद्योग सम्भवतः इस श्रेणी में आ सकते हैं क्योंकि किसी भी गतिविधि को केन्द्र सरकार द्वारा उद्योग नहीं होने के रूप में अधिसूचित किया जा सकता है!

इस कोड के तहत पहले की तरह लेबर कोर्ट नहीं होंगे और केवल राष्ट्रीय न्यायाधिकरण या एक क्षेत्र के लिए औद्योगिक न्यायाधिकरण होंगे। पुराने औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम के तहत, लेबर कोर्ट और औद्योगिक न्यायाधिकरणों की अध्यक्षता न्यायिक अधिकारियों (जजों) द्वारा की जाती थी। नयी संहिता में, औद्योगिक न्यायाधिकरणों में 2 सदस्य होंगे एक न्यायिक और एक प्रशासनिक। कुछ मुद्दों पर वे अकेले भी मामलों को सुन सकते हैं और फ़ैसला कर सकते है यानी प्रशासनिक सदस्य (कोई सेवानिवृत्त सरकारी अधिकारी) अकेले मज़दूरो के मुद्दो पर निर्णय ले सकते हैं, जिसका प्रभावी रूप से अर्थ है कि मज़दूरों के पक्ष में निर्णय की सम्भावना न के बराबर हो जाती है।

एप्रेण्टिस अधिनियम में भी संशोधन करके नये लेबर कोड के आने से पहले ही सरकार द्वारा प्रशिक्षुओं की पुरानी प्रणाली को समाप्त कर दिया गया था। प्रशिक्षुता पूरी होने के बाद प्रशिक्षुओं को नौकरी पर रखने की नियोक्ता की ज़िम्मेदारी को हटा दिया गया था, सरकार अब प्रशिक्षु के वजीफ़े का आंशिक भुगतान देगी और प्रशिक्षु को पूर्णकालिक मज़दूर की तरह काम करना होगा। दूसरी ओर, जबकि पुराने औद्योगिक विवाद अधिनियम में मज़दूर की परिभाषा में प्रशिक्षु शामिल थे, नये औद्योगिक सम्बन्ध संहिता में मज़दूर की परिभाषा में विशेष रूप से प्रशिक्षुओं को शामिल नहीं किया गया है। अतः प्रशिक्षु बन्धुआ मज़दूरों की तरह होंगे जो पूर्णकालिक रूप से कार्य कर रहे हैं, लेकिन उन्हें न्यूनतम मज़दूरी का अधिकार या अन्य कोई भी अधिकार व संरक्षण प्राप्त नहीं होंगे। इस अवधारणा को सरकार द्वारा अपनी विभिन्न 'कौशल विकास' योजनाओं तक विस्तारित किया गया है, जिसमें युवाओं को एक वर्ष के लिए मामूली वज़ीफ़े पर पूर्णकालिक काम करने के लिए निजी औद्योगिक प्रतिष्ठानों में प्रशिक्षुओ के रूप में भेजा जाता है,

(पेज 19 पर जारी)

मोदी सरकार के चार लेबर कोड क्या हैं और ये मज़दूर-विरोधी क्यों हैं?

(पेज 18 से आगे)

जिसके बाद उन्हें एक कौशल प्रमाण पत्र दिया जाता है, जिसका नौकरी के बाज़ार में कोई मूल्य नहीं है!

व्यावसायिक सुरक्षा, स्वास्थ्य और कार्यस्थितियों पर संहिता, 2020 (The Occupational Safety, Health and Working Conditions Code 2020; OHS Code)

व्यावसायिक सुरक्षा, स्वास्थ्य और कार्यस्थितियों पर संहिता, 2020 (ओएचएस संहिता) को सुरक्षा, स्वास्थ्य, कार्यस्थिति से जुड़े 13 पुराने क़ानूनों को ख़त्म करके बनाया गया है। नाम के उलट, इस कोड में मज़दूरों की सुरक्षा के साथ और ज़्यादा खिलवाड़ किया गया है। इस संहिता के तहत फ़ैक्ट्री अधिनियम, 1948 के द्वारा दी गयी 'कारख़ाने' की परिभाषा में महत्वपूर्ण बदलाव किया गया है। यह केवल उन्हीं प्रतिष्ठानों को 'कारख़ाना' मानती है, जहाँ उत्पादन प्रक्रिया में बिजली का प्रयोग होता है और 20 या उससे अधिक श्रमिक कार्यरत हैं, अथवा जहाँ बिजली का प्रयोग नहीं होता और 40 या उससे अधिक मज़दूर काम करते हैं। जबकि पुराने अधिनियम में यह सीमा ठीक इसकी आधी थी। ऑटोमोबाइल सेक्टर जैसे आधुनिक उद्योगों की तीसरे-चौथे टियर की अनेक फैक्ट्रियाँ, जो आवश्यक छोटे-छोटे कल-पुर्ज़े बनाती हैं, वहाँ 20 से कम श्रमिक काम करते हैं। 2017-18 के 'ऐनुअल सर्वे आफ़ इण्डस्ट्री' के अनुसार 47.1 प्रतिशत कारख़ाने ऐसे हैं, जहाँ 20 तक मज़दूर काम करते हैं। 33.8 प्रतिशत कारख़ानों में 20-99 मज़दूर काम करते हैं। नयी परिभाषा के अनुसार ऐसे प्रतिष्ठान अब श्रम संहिताओं के दायरे से बाहर हो जायेंगे।

नयी संहिता के तहत श्रमिकों की सुरक्षा के साथ गम्भीर खिलवाड़ किया गया है। कारख़ानों में सुरक्षा के इन्तज़ाम पहले ही खस्ताहाल थे, अब उनकी स्थिति और भी बदतर होने वाली है। आइए सबसे पहले 'ओएचएस' संहिता के तहत कारख़ाना पंजीकरण की प्रक्रिया पर एक नज़र डालें। अब कोई भी प्रतिष्ठान केवल ऑनलाइन आवेदन के माध्यम से कारख़ाने का पंजीकरण प्राप्त कर सकता है। पंजीकरण अधिकारी, आवेदन प्राप्त होने पर, प्रतिष्ठान का पंजीकरण करेगा और प्रमाण-पत्र जारी करेगा। संहिता में ऐसा कोई अनिवार्य प्रावधान नहीं है कि प्रमाण-पत्र जारी करने से पहले अधिकारी क़ानून में निर्धारित सुरक्षा मानकों के अनुरूप परिसर और सुविधाओं का भौतिक निरीक्षण करे। यानी सुरक्षा प्रबन्धों को नज़रअन्दाज़ करने की वैधानिक छूट कारखाना मालिकों को मिल गयी है। इसके अतिरिक्त, यदि निर्धारित अवधि के भीतर पंजीकरण अधिकारी प्रमाण-पत्र जारी नहीं करता है, तो प्रतिष्ठान को स्वतः पंजीकृत मान लिया जायेगा और एक ऑटो-जनरेटेड पंजीकरण प्रमाण-पत्र जारी कर दिया जायेगा। ज़रा इसकी तुलना श्रमिक यूनियनों के पंजीकरण की जटिल और अनिश्चित प्रक्रिया से कीजिये—इन संहिताओं का वर्गीय चरित्र साफ़ नज़र आयेगा।

यही नहीं, अब सेफ़्टी कमेटियाँ केवल उन्हीं कारख़ानों में अनिवार्य होंगी, जहाँ 500 या उससे अधिक श्रमिक कार्यरत हों। खतरनाक उद्योगों के लिए यह सीमा 250 श्रमिक तय की गयी है। पुराने क़ानून में यह स्पष्ट रूप से निर्धारित था कि श्रमिक कितनी सीमा तक रासायनिक, विषैली या ख़तरनाक परिस्थितियों में काम कर सकते हैं। नये क़ानून में यह स्पष्टता समाप्त कर दी गयी है और इसे राज्य सरकारों के विवेक पर छोड़ दिया गया है।

इस संहिता द्वारा ठेकेदारी प्रथा को और अधिक मज़बूत किया गया है। अब 50 मज़दूरों तक की आपूर्ति करने वाले ठेकेदार इस संहिता के दायरे से बाहर रहेंगे, जबकि पहले यह सीमा 20 मज़दूरों की थी। अब ठेका श्रमिकों से वैधानिक रूप से स्थायी प्रकृति का कार्य कराया जा सकेगा। पहले ठेका श्रमिकों के भुगतान के समय मुख्य नियोक्ता के अधिकृत प्रतिनिधि की उपस्थिति अनिवार्य थी, लेकिन अब यह अनिवार्यता समाप्त कर दी गयी है। इसके अलावा इस संहिता में ठेकेदार को भी नियोक्ता के तौर पर शामिल किया गया है। यह प्रमुख नियोक्ता को मज़दूरों के प्रति सारी ज़िम्मेदारियों से मुक्त करने का रास्ता खोल देता है। इस कोड के मुताबिक कम्पनी की मुख्य गतिविधि में ठेका मज़दूरों से काम करवाया जा सकता है। मुख्य गतिविधि क्या है, यह सरकार के प्राधिकरण द्वारा तय किया जायेगा। यानी अब ठेका मज़दूरों को किसी भी प्रकार के काम में लगाया जा सकता है। अब ठेका मज़दूर 'समान कार्य का समान वेतन' की माँग क़ानूनी तौर पर भी नहीं उठा पायेंगे। कोड के मुताबिक़, अगर कोई ठेकेदार, मज़दूरों के लिए तय किये गये काम के घण्टे, वेतन और अन्य ज़रूरी सुविधाओं की शर्तें नहीं पूरी कर पाता, तो भी उस ठेकेदार को 'कार्य-विशिष्ट' लाइसेंस दिया जा सकता है।

अब तक लागू क़ानूनों के अन्तर्गत शाम 7 बजे से सुबह 6 बजे के दरम्यान महिला श्रमिकों से काम कराना प्रतिबन्धित था। अब महिला श्रमिकों की तथाकथित "सहमति" के आधार पर उनसे रात की पाली में भी काम कराया जा सकेगा। लेकिन उनकी सुरक्षा की ज़िम्मेदारी मालिकों की नहीं होगी! दूसरी ओर, कारख़ाना परिसर में पालनाघर (क्रेच) सुविधा के नियम को भी कमज़ोर किया गया है। पहले यह सुविधा 30 महिला श्रमिकों वाले कारखानों में अनिवार्य थी, अब इसे बढ़ाकर 50 कर दिया गया है। साथ ही इसमें मालिकों को क्रेच खोलने की ज़िम्मेदारी से भी छूट दी गयी है। मालिक चाहे तो किसी एनजीओ की जगह या आँगनवाड़ी केन्द्र को भी क्रेच के तौर पर इस्तेमाल कर सकता है।

नये क़ानून में साप्ताहिक और त्रैमासिक ओवरटाइम की पूर्व निर्धारित सीमा समाप्त कर दी गयी है। अब यह राज्य सरकारों के ऊपर छोड़ दिया गया है कि वे तय करें कि मज़दूरों को ओवरटाइम के नाम पर कितना निचोड़ा जायेगा। सवैतनिक वार्षिक अवकाश के नियमों को भी बदल दिया गया है। पहले 240 दिनों में 12 सवैतनिक अवकाश मज़दूर ले सकते थे। अब 180 दिनों में 9 सवैतनिक अवकाश ही ले सकते हैं।

सामाजिक सुरक्षा संहिता, 2020 (The Code on Social Security, 2020)

सामाजिक सुरक्षा संहिता, 2020 पुराने 9 श्रम कानूनों को समाप्त कर उनके स्थान पर लागू किया जा रहा है। करोड़ों असंगठित मज़दूर तो पहले ही हर तरह की सामाजिक सुरक्षा से वंचित हैं। बड़ी कम्पनियों में काम करने वाले लगभग 90 प्रतिशत से ज़्यादा मज़दूर ईएसआई, पीएफ़, स्वास्थ्य बीमा, पेंशन आदि से वंचित रहते हैं। इस कोड में सरकार ने बातें तो बड़ी लच्छेदार की हैं जिनसे किसी को भ्रम हो सकता है कि सरकार मज़दूरों को सामाजिक सुरक्षा देने के लिए काम कर रही है। मगर वास्तविकता इसके ठीक विपरीत है।

इस संहिता में मज़दूरों को संगठित व असंगठित की श्रेणी में बाँट दिया है। संगठित क्षेत्र के मज़दूरों को मिलने वाली सुविधाओं को कमज़ोर किया गया है। अनौपचारिक मज़दूर (भले ही संगठित क्षेत्र में कार्यरत हो) को सामाजिक सुरक्षा पाने के लिए अब सरकार के भरोसे रहना होगा। नयी सामाजिक सुरक्षा संहिता के तहत श्रमिकों, कर्मचारियों को सभी सामाजिक सुरक्षा योजनाओं का लाभ लेने के लिए आधार कार्ड द्वारा ऑनलाइन पंजीकरण को अनिवार्य कर दिया गया है। इसे नियमित अपडेट न करने की सूरत में पंजीकरण रद्द कर दिया जायेगा। अब अनौपचारिक मज़दूरों की ईपीएफ देनदारी नियोक्ताओं अथवा कम्पनी मालिकों की नहीं होगी, बल्कि सरकार द्वारा न्यूनतम सहायता के रूप में होगी। अनौपचारिक, असंगठित, गिग, प्लेटफ़ॉर्म मज़दूरों के लिए ईएसआई-ईपीएफ को अनिवार्य अधिकार के रूप में नहीं दिया गया है, केवल "योजना" का वादा किया गया है। सरकार का कहना है कि वह "ऐसे श्रमिकों के लिए सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ बना सकती है"। यानी कम्पनी मालिक अथवा नियोक्ता ईएसआई-पीएफ देने से मुक्त है, और सरकार द्वारा देनदारी भी किसी कानूनी बाध्यता के तहत नहीं है।

गौरतलब बात यह है कि इस स्कीम के तहत क्या सुविधाएँ दी जायेंगी और मज़दूर तक इसे कैसे पहुँचाया जायेगा, इसका कोड में कहीं भी ज़िक्र नहीं है। साथ ही कोड में कहा गया है कि इसके लिए 'राष्ट्रीय सामाजिक सुरक्षा फ़ण्ड' का गठन किया जायेगा। देखा जाये तो इसका गठन 2011 में ही किया गया था। 2015-16 में मोदी सरकार ने 607 करोड़ रुपये सामाजिक सुरक्षा फ़ण्ड के लिए जारी किये (अर्जुनसेन गुप्ता कमेटी के अनुसार जी.डी.पी का 0.39 प्रतिशत सामाजिक सुरक्षा में ख़र्च किया जाना चाहिए, इस हिसाब से मोदी सरकार द्वारा जारी की गयी राशि बेहद कम है) पर उसका लाभ किसी मज़दूर तक नहीं पहुँचा। यानी असंगठित-अनौपचारिक मज़दूरों की बड़ी आबादी अब क़ानूनी तौर पर सामाजिक सुरक्षा से वंचित हो जायेगी।

ईपीएफ में नियोक्ता तथा श्रमिक के द्वारा जमा की जाने वाली राशि को 12% से घटाकर 10% कर दिया गया है। मान लिजिए आपका वेतन 10 हज़ार है। पहले 12 प्रतिशत पीएफ़ कटने के बाद आपको 8800 रुपये मिलते थे, अब 10 प्रतिशत पीएफ़ कटने के बाद आपको 9000 रुपये मिलेंगे। नियोक्ता को भी 10 प्रतिशत ही देना होगा। यानी आपके पीएफ़ में पहले 2400 रुपये जमा होते, पर अब 2000 रुपये ही जमा होंगे। इससे होगा यह कि तात्कालिक तौर पर आपके हाथ में पैसा कुछ अधिक होगा, पर असल में आपके पीएफ़ में कटौती होगी। दूसरी तरफ़ कम्पनियों को इसमें सीधा-सीधा फ़ायदा होगा और उन्हें 2 प्रतिशत कम रक़म जमा करनी होगी। इसके साथ ही सरकार यदि चाहे तो यह प्रतिशत और घटा सकती है। इसी प्रकार ईएसआई में भी दोनों पक्षों की देनदारी घटा दी गयी है।

यही नहीं, यदि किसी प्रतिष्ठान में श्रमिकों का बहुलांश और प्रबन्धन ईएसआई-पीएफ की योजना से बाहर आना चाहता है, तो ऐसा करना अब सम्भव है। कहने की कोई ज़रूरत नहीं कि आज जहाँ कारखानों में श्रमिकों को पहचान पत्र तक नहीं दिया जाता, वहाँ कागज़ों पर बहुलांश श्रमिकों की वही "राय" होगी जो, प्रबन्धन चाहेगा। ग़ौरतलब है कि नियोक्ता अथवा मालिका द्वारा ईएसआई-पीएफ में अपना हिस्सा जमा ना करने पर सज़ा का प्रावधान हटा दिया गया है। अगर मज़दूर ठेके पर काम कर रहा है, तो ईएसआई देने की ज़िम्मेदारी ठेकेदार की होगी, प्रमुख नियोक्ता को का इससे कोई लेना-देना नहीं होगा। यानी अब कम्पनियों के लिए ईएसआईसी लागू न करने का रास्ता भी अब खोल दिया गया है।

ग्रैच्युटी के क़ानून को भी लचीला बना दिया गया है, ताकि कम्पनियाँ चाहे तो एक साल में ही कामगारों को काम से निकाल सकती हैं। अगर पुनः उसी कामगार को वापस काम पर रखा भी जाता है, तब उसे नये कामगार की श्रेणी में शामिल किया जायेगा। सामाजिक सुरक्षा संहिता में कामगार स्त्रियों की बड़ी आबादी को मातृत्व लाभों से वंचित कर दिया गया है। प्रसूति के ठीक पहले और बाद में स्त्रियों से काम कराने पर रोक लगायी गयी है। लेकिन इसी में आगे कहा गया कि जो स्त्री "अपनी प्रसूति के ठीक पहले के 12 महीनों के दौरान कम से कम 80 दिनों तक किसी प्रतिष्ठान में काम कर चुकी होगी" वह मातृत्व लाभ पाने की हक़दार होगी। बताने की ज़रूरत नहीं कि ज़्यादातर मज़दूर स्त्रियाँ इसके दायरे से बाहर हो जायेंगी।

उपरोक्त चर्चा से आप समझ चुके होंगे कि ये चारों लेबर कोड वास्तव में कितने ख़तरनाक हैं। फ़ासीवादी मोदी सरकार द्वारा इन लेबर कोडों को लागू करना मज़दूरों-कर्मचारियों के सभी अधिकारों की हत्या है। ये अपने संघर्षों और क़ुर्बानियों के दम पर हासिल किये गये अबतक के हमारे सभी हकों पर मोदी सरकार का सबसे बड़ा फ़ासीवादी हमला है। यह मज़दूरों-कर्मचारियों की पूरी मेहनतकश आबादी को ग़ुलामों में तब्दील करने का एक फ़ासीवादी उपक्रम है। यह वक़्त है कि भारत के सभी संगठित व असगठित मज़दूर-कर्मचारी एक साथ संगठित होकर लड़ें और फ़ासीवादी मोदी सरकार के इस हमले का संगठित होकर जवाब दें। यह वक़्त है जब हम एकदिवसीय हड़तालों की रसमदायगी से आगे बढ़ें और एक निर्णायक संघर्ष का बिगुल फूँक दें। यह वक़्त है जब सभी केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों-संघों व कम्पनियों-पेशों आदि की यूनियनों को साथ मिलकर अनिश्चितकालीन आम हड़ताल का आह्वान करना चाहिए और इन लेबर कोड्स के वापस लेने तक अनिश्चितकालीन आम हड़ताल को जारी रखना चाहिए। मोदी सरकार को अगर चार लेबर कोड वापस लेने के लिए मजबूर करना है, तो मज़दूर-कर्मचारी आबादी को अनिश्चितकालीन आम हड़ताल के लिए एकजुट करना ही होगा।

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2023-2026
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 5, प्रत्येक माह

उत्तर प्रदेश में एसआईआर का खेल और डिटेंशन कैम्प बनाने की फ़ासिस्ट साज़िश

● प्रसेन

केन्द्रीय चुनाव आयोग ('केचुआ') की एसआईआर के ज़रिये बिहार चुनाव में भाजपा पर कृपा बरस चुकी है। बिहार चुनाव में भाजपा ने चुनाव आयोग की कृपा और अपने फ़ासीवादी तन्त्र से असम्भव को सम्भव बना दिया। बिहार में इस सफलता के बाद अब 12 राज्यों और केन्द्रशासित राज्यों में एसआईआर का खेल जारी है। 'केचुआ' की कृपा उत्तर प्रदेश में विशेष तौर पर बरस रही है। बिहार में "घुसपैठियों" की खोज करने के बाद (जो मिले ही नहीं!) अब 'केचुआ' उत्तर प्रदेश में "घुसपैठियों" की खोज में लग गया है! चुनाव आयोग ने निर्वाचन नामावली को शुद्ध करने का बीड़ा उठाया है। यह शायद प्रधानमंत्री मोदी के 18-18 घण्टे काम करने का ही असर है कि चुनाव आयोग नागरिकता साबित करने का भी काम कर दे रहा है जबकि यह काम गृह मन्त्रालय का है! इधर "घुसपैठियों" की खोज चुनाव आयोग अभी कर भी नहीं पाया है कि उधर उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री योगी ने अपने को प्रधानमंत्री मोदी से भी मेहनती साबित करते हुए उत्तर प्रदेश में डिटेंशन कैम्प बनाने का निर्देश जारी कर दिया है। आम मेहनतकश जनता को यह जानना चाहिए कि निर्वाचन नामावली को शुद्ध करने का बीड़ा उठाने में 'केचुआ' और सरकार की क्या साज़िश है? इस प्रक्रिया में किनके बाहर होने की सबसे अधिक सम्भावना है? योगी सरकार द्वारा डिटेंशन कैम्प बनाने के पीछे क्या मक़सद है?

ग़ौरतलब है कि उत्तर प्रदेश में एसआईआर के लिए 4 नवम्बर से 4 दिसम्बर तक का समय तय किया गया था। लेकिन इतने कम समय में भयंकर अफ़रा-तफ़री मची और भयानक दबाव के कारण कई बीएलओ की आत्महत्याओं की घटनायें सामने आयीं। हालाँकि चुनाव आयोग के लिए यह कोई बड़ा मसला नहीं था। लेकिन समस्या यह हो गयी कि तय समय-सीमा के भीतर लगभग 2.91 करोड़ फ़ॉर्म वापस नहीं आये। जिसके बाद मजबूरन चुनाव आयोग को उत्तर प्रदेश में गणना प्रपत्र जमा करने की तिथि पहले 7 दिन फिर 14 दिन और बढ़ानी पड़ी। अब अन्तिम मतदाता सूची के प्रकाशन की तारीख़ बढ़ाकर 28 फरवरी कर दी गयी है। चुनाव आयोग के आँकडों के अनुसार, 27 अक्टूबर 2025 को प्रकाशित चुनावी सूचियों में उत्तर प्रदेश में 15.44 करोड़ मतदाता दर्ज हैं। एसआईआर अभियान के दौरान, बूथ स्तर के अधिकारी (बीएलओ) ने 15.43 करोड़ (99.97%) मतदाताओं को गणना फ़ॉर्म वितरित किये, लेकिन केवल 80.29% फ़ॉर्म ही वापस प्राप्त हुए, जिनमें मतदाता या परिवार के सदस्य के हस्ताक्षर थे। शेष 19% फ़ॉर्म असंग्रहणीय हैं जिनमें अनट्रेसेबल, मृत, डुप्लिकेट, स्थायी रूप से स्थानान्तरित मतदाता और फ़ॉर्म लेकर वापस नहीं करने वाले मतदाता हैं।

वास्तव में यह पूरी प्रक्रिया चुनाव आयोग और सरकार की मंशा साफ़ करती है। सबसे पहली बात तो यह है कि जानबूझकर एसआईआर प्रक्रिया की समय-सीमा कम रखी गयी और नवम्बर के महीने में शुरू की गयी जबकि तमाम त्योहारों में अपने घर वापस आये मज़दूर तमाम औद्योगिक केन्द्रों की ओर लौट चुके होते हैं। ऐसे में जानकारी के अभाव और जीविका की मजबूरी के चलते मेहनतकश आबादी का एक बड़ा हिस्सा इस प्रक्रिया में भागीदार नहीं हो सकता। दूसरे, एसआईआर की प्रक्रिया को, जिसके अनुसार बीएलओ को मतदाता से मिलकर मतदाता सूची दुरुस्त करनी होती थी, बदल दिया गया। अब बीएलओ द्वारा मतदाताओं को एक फ़ॉर्म दिया जा रहा है, जिसे भरकर उन्हें बीएलओ को वापस करना है। इस फ़ॉर्म में मतदाता को अपना नाम 2003 की मतदाता सूची से मिलान करवाना है। जिसका नाम 2003 की मतदाता सूची में नहीं है उन्हें 2003 की मतदाता सूची से अपने माता या पिता की भाग संख्या और क्रमांक आदि भर कर देना है। जिनके माता-पिता का नाम भी 2003 की सूची में नहीं है उनके लिए तीन केटेगरी बनायी गयी है। पहला, जिनका जन्म 01/07/87 से पहले भारत में हुआ है उनको तय किये गये 13 अभिलेखों में से कोई स्व-सत्यापित अभिलेख प्रस्तुत करना पड़ेगा जिससे उनके जन्मतिथि या जन्मस्थान का पता चलता हो। दूसरा, जिनका जन्म 01/071987 और 02/12/2004 के बीच हुआ है उनको अपना और अपने माता या पिता का स्व-सत्यापित अभिलेख प्रस्तुत करना पड़ेगा जिससे उनके जन्मतिथि या जन्मस्थान का पता चलता हो। तीसरा, जिनका जन्म 02/12/2004 के बाद भारत में हुआ है उनको अपना, अपने माता-पिता दोनों का स्व-सत्यापित कोई अभिलेख प्रस्तुत करना पड़ेगा, जिससे उनके और उनके माता-पिता की जन्मतिथि और जन्मस्थान का पता चलता हो।

जानबूझकर बनायी गयी इस जटिल प्रक्रिया का नतीजा यही होना था कि लगभग 2.91 करोड़ लोगों के फ़ॉर्म वापस नहीं आये। बहुत विरोध के बाद भले ही इसकी समय-सीमा एक बार 7 दिन और 14 दिन के लिए बढ़ा दी गयी हो लेकिन अभी भी यह सारे फ़ॉर्म इकट्ठे तभी हो सकते हैं जबकि प्रतिदिन 19 लाख 14 हज़ार फ़ॉर्म जमा किये जायें। एक तरफ यह स्थिति है कि रोज़ाना 19 लाख 40 हज़ार फ़ॉर्म जमा कराये जायें तब 2.91 करोड़ बचे या वापस नहीं लौटे फॉर्मों का टारगेट पूरा होगा; दूसरी तरफ यूपी के सीईओ का कहना है कि बुधवार तक 99.13% एकत्रित फॉर्मों का डिजिटलाइज़ेशन पूरा हो चुका है, और गुरुवार यानी 12 दिसम्बर तक 100% हो जायेगा। उन्होंने ज़ोर दिया कि 2.91 करोड़ मतदाताओं की जाँच ड्राफ्ट चुनावी सूचियों के प्रकाशन से पहले पूरी की जायेगी, और मृत, स्थानान्तरित, डुप्लिकेट तथा अनट्रेसेबल मतदाताओं के नाम हटा दिये जायेंगे। फ़ॉर्म भरवाने में जगह-जगह संघी/भाजपाई लगे हुए थे। मतदाता सूची के सत्यापन में बीएलओ और बीएलए (बूथ एजेण्ट) की भूमिका रहेगी। स्वतः स्पष्ट है प्रशासनिक मशीनरी में फ़ासिस्टों की आन्तरिक पकड़ और स्वयंसेवकों की बड़ी संख्या के चलते इस प्रक्रिया में भाजपा के पक्ष में हेर-फेर की पूरी गुंजाइश होगी। इस प्रक्रिया में बहुत से ग़रीब दलित, स्त्रियों, अल्पसंख्यकों, प्रवासी मज़दूरों, हर छोटे-बड़े शहर में सड़कों पर रहने वाले या एक शहर से दूसरे शहर ठीहा बदलने वाले करोड़ों लोगों के बाहर होने की पूरी सम्भावना है। इसके पहले बिहार में एसआईआर के अनुभव हमारे सामने हैं।

वास्तव में देखा जाये तो फ़ासिस्ट एक साथ कई भयानक जनविरोधी कामों को अंजाम दे रहे हैं। सबसे पहले तो चुनावों में धाँधली के अलावा एसआईआर के ज़रिये बहुत कैलकुलेटेड तरीक़े से ग़रीब दलित, स्त्रियों, मुसलमानों और प्रवासी मज़दूरों की एक ऐसी बड़ी आबादी को मतदान के अधिकार से वंचित कर रही है, जिनका वोट आमतौर पर भाजपा को नहीं जाता है। इस तरह आगामी चुनावों के मद्देनज़र भाजपा को अपनी जीत सुनिश्चित करने के लिए यह काफ़ी स्थाई क़दम साबित होगा। दूसरे, एसआईआर के ज़रिये मोदी-शाह जोड़ी चोर रास्ते से राष्ट्रीय नागरिकता रजिस्टर (एनआरसी) और नागरिकता संशोधन कानून (सीएए) के काम को अंजाम दे रही है। वास्तव में, चुनाव आयोग को नागरिकता की वैधता जाँचने, उसे क़ायम रखने या रद्द करने का कोई अधिकार नहीं है। 2003 एसआईआर के दिशा-निर्देश स्पष्ट शब्दों में यह बात कहते हैं कि नागरिकता निर्धारित करने का अधिकार सिर्फ़ गृह मन्त्रालय को है। लेकिन फ़ासीवादी भाजपा इन दिशानिर्देशों की धज्जियाँ उड़ाते हुए नागरिकता निर्धारित करने का काम एसआईआर के ज़रिये कर रही है। यानी जो फ़ासिस्टों के हर ज़ुल्म-अन्याय में उसके साथ नहीं है उसे वोट देने का अधिकार नहीं है। इन फ़ासिस्टों के आदर्श हिटलर ने भी यहूदियों और राजनीतिक विरोधियों के मताधिकार को खुलेआम छीन लिया था। अब फ़र्क इतना है कि यह काम खुलेआम करने के बजाय पर्देदारी में और घुमा-फिराकर किया जाता है। यह आज के फ़ासीवाद की ख़ासियत है। पूँजीवादी जनवाद के खोल को नष्ट नहीं किया जाता, लेकिन उसकी अन्तर्वस्तु को क्रमिक प्रक्रिया में नष्ट किया जाता है, जो फ़ासीवाद को एक सतत जारी परियोजना में तब्दील कर देता है।

तीसरे, एसआईआर के ज़रिये नागरिकता साबित करने की आम मेहनतकश विरोधी प्रक्रिया पर पर्दा डालने और उसे वैध ठहराने के लिए फ़ासिस्ट न केवल "अवैध घुसपैठ को रोकने" का शोर मचा रहे हैं बल्कि अवैध घुसपैठ को साम्प्रदायिक रंग देकर बड़ी आबादी का ध्यान भटकाने की साज़िश कर रहे हैं। योगी व भाजपा नेताओं के बयानों को नमक-मिर्च लगाकर गोदी मीडिया और सोशल मीडिया द्वारा खूब प्रचारित किया जा रहा है कि यह "बांग्लादेशी मुस्लिम घुसपैठियो" को चिह्नित करने के लिए किया जा रहा है। बिहार चुनाव में अमित शाह और नरेन्द्र मोदी दोनों ने खुलकर कहा कि यह "घुसपैठियों" को भगाने का चुनाव है, एसआईआर के ज़रिये "घुसपैठियों" की पहचान की जायेगी। इन "घुसपैठियों" से मोदी-शाह का मतलब हमेशा बांग्लादेशी मुसलमान था। यानी "घुसपैठिये" के नक़ली शोर के पीछे भी भाजपाई फ़ासीवादियों का मक़सद था समाज में साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण को बढ़ावा देना ताकि जनता को असल मसलों से भटकाया जा सके। योगी आदित्यनाथ ने बयान दिया कि, "देश के संसाधनों पर हमारे नागरिकों का हक़ है। उत्तर प्रदेश की सुरक्षा, सामाजिक सन्तुलन और सुदृढ़ क़ानून-व्यवस्था हमारी सर्वोच्च प्राथमिकता है।" यही नहीं योगी आदित्यनाथ ने सुप्रीम कोर्ट के इस बयान का खूब इस्तेमाल किया कि घुसपैठियों के लिए 'रेड कार्पेट' थोड़े बिछाया जायेगा! अब सोचने वाली बात है कि योगी के नागरिक कौन हैं? मेहनतकश तो कत्तई नहीं! क्योंकि मेहनतकश आबादी का मुट्ठीभर पूँजीपतियों द्वारा खून चूसने के लिए काम के घण्टों की क़ानूनी सीमा 8 से 12 करने के लिए श्रम क़ानून में संशोधन उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा किया जा चुका है। इसी तरह मज़दूरों को ग़ुलामों की तरह खटाने के लिए मोदी सरकार द्वारा 'चार लेबर कोड' लागू कर दिया गया है। मोदी-योगी के लिए असल में नागरिक 'अम्बानी-अदानी' जैसे पूँजीपति हैं और उन्हीं के हक़ में यह सारे क़दम उठाये जा रहे हैं। भाजपा की झूठ-प्रचार मशीनरी ने फैलाया था कि बिहार के सीमांचल के चार ज़िले "घुसपैठियों" से भरे हुए हैं। लेकिन इन चार जिलों में नागरिकता पर मिलने वाली आपत्तियों की कुल संख्या थी मात्र 106, इनमें से भी केवल 40 के नाम ख़ारिज हुए, हालाँकि उसमें भी पर्याप्त धांधली की गयी। इन 40 ख़ारिज मतदाताओं में हिन्दू कितने थे और मुसलमान कितने? हिन्दू थे 25 और मुसलमान थे 15! यानी, "घुसपैठिये" तो मिले नहीं, लेकिन वैध नागरिकों के ही नाम काट दिये गये और मुसलमान आबादी के बढ़ने का हौव्वा फैलाकर हिन्दू आम मेहनतकश आबादी को ही चपेट में ले लिया गया! यही असम के एनआरसी में भी हुआ था जिसमें 19 लाख रद्द नागरिकताओं में 14 लाख हिन्दू निकले थे।

आखिर डिटेंशन कैम्प बनाने के लिए क्यों उतावली है योगी सरकार?

ऊपर हम देख चुके हैं कि बिहार और असम आदि जगहों पर "अवैध मुस्लिम घुसपैठियों" का शोर हवाई था, बेबुनियाद था। लेकिन उत्तर प्रदेश में अभी एसआईआर की प्रक्रिया पूरी भी नहीं हुई तब तक योगी आदित्यनाथ द्वारा हरेक ज़िले में 'डिटेंशन कैम्प' बनाने की घोषणा शुरू कर दी गयी। ग़रीब बस्तियों और झुग्गी बस्तियों में एटीएस और पुलिस छापेमारी कर रही है। 'टॉर्च अभियान' चलाया जा रहा है। जो स्थिति दिख रही है उससे साफ़ तौर पर लग रहा है कि इस बार उत्तर प्रदेश सरकार बड़ी संख्या में "घुसपैठियों" को "तलाश" लेगी! यही वजह है कि योगी आदित्यनाथ ने 22 नवम्बर 2025 को सभी 75 ज़िलों के डीएम को निर्देश जारी कर दिया था कि सभी ज़िलों में अस्थायी डिटेंशन सेण्टर बनाये जायें, जहाँ सत्यापन तक "घुसपैठियों" को रखा जायेगा। साथ ही, 18 मण्डल डिवीजनों में स्थायी सेण्टर स्थापित करने का आदेश है। ये सेण्टर हाई-टेक होंगे। CCTV, बायोमेट्रिक, फ़ेस रेकग्निशन और मल्टी-लेयर सिक्योरिटी से लैस, ताकि भागने की कोई सम्भावना न हो। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में तो तिहाड़ जेल से भी बड़ा डिटेंशन सेण्टर बनाया जा रहा है जिसकी क्षमता 15000 लोगों को रखने की होगी।

स्थिति बहुत साफ़ है। आम

(पेज 2 पर जारी)

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ- 226016 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : अभिनव ● सम्पादकीय पता : 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ- 226016